स्वप्न-भंग

होमवती

समर्पण

जीवन के मृदुलतम क्षणों को जिन्होंने निरन्तर
संघर्ष की ज्वालाओं में तपाया, यह
संग्रह अपने उन्हीं भाई
रघुकुल तिलक को
सस्नेह।

—होमवती

क्रम

मेरी बात

मैंने कभी कहानी लिखने के लिए ही कहानी लिखी हो, यह बात ध्यान में नहीं आती। हाँ, जब जैसा भला या बुरा अनुभव हुआ तभी जैसे कुछ लिख डालने के लिए बाध्य सी हो गई। यह दोष है या गुण— यह मैं नहीं जानती। प्रस्तुत-सग्रह की कहानियाँ भी इसी प्रकार लिखी गई हैं जैसे कि पहली और पुस्तकें। परन्तु देश, काल और परिस्थितियों का हेर फेर और उससे उत्पन्न हुई अनुभूतियों में तो अन्तर होना स्वाभाविक है ही, और इनसे प्रसूत कई चित्र इस सग्रह में हैं। इधर कुछ ही समय के अन्तर्गत हमारे जीवन-स्तर में आकाश पाताल का

अन्तर पड गया है, जिससे लेखक ही नहीं अपितु साधारण से साधारण नागरिक भी जैसे जीवन की गति-विधि और अभावों से उत्पन्न हुई उलझनों के प्रति सजग सा हो उठा है। प्राणी मात्र की जब न्यून से न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नही हो पातीं तब वह अपनी परेशानियों की कसौटी पर पूरे समाज या किसी वर्ग-विशेष का रहन-सहन और सुविधा असुविधाओं को परखने का आदी सा बन जाता है। जब जन जन के सामने भोजन और वस्त्र जैसी आवश्यक वस्तुओं का अभाव प्रति पल मुँह फाडे ताण्डव करता रहता हो, जब जनता के सम्मुख शिशुओं के कंकाल एक एक बूँद दूध के लिए तड़प तड़प कर प्राण देते रहते हों, तब वह आए दिन होने वाले भोज, चमचमाती हुई कारें, और आलीशान कोठियों की चकाचौंध से किस प्रकार विमुख और उदासीन रह सकता है। जो पेट से पट्टी बाँधकर जीने को लाचार है वह जानना चाहता है कि जो कल मेरा पडौसी था, जिसकी बराबरी करने का अधिकार मुझे प्राप्त था, वह आज उस बड़ी कोठी में बैठ कर न जाने क्या खाता होगा, किस प्रकार रहता होगा, और कैसे जीता होगा।

लेखक और विशेषकर हिन्दी-लेखक भी उसी समुदाय का अभावों में पला प्राणी है। वह भी सब सुनता है, देखता है, अनुभव करता है, और अपनी अनुभूतियों को भाषा का रूप देने की क्षमता रखने के कारण जैसे कुछ कह डालने पर विवश होता है।

इस पुस्तक में ऐसी ही अनुभूतियों के आधार पर प्रस्तुत कुछ कहानियाँ पाठकों के हाथों मे देने का यत्न किया गया है। वह सफल बन पड़ी हैं या असफल— इसका निर्णय योग्य पाठक और विद्वान् समा-

लोचक स्वय कर लें। हाँ, इतना अवश्य कह सकती हूँ कि इन कहानियों को मैंने केवल उन्हीं निम्न वर्ग के पाठकों को लक्ष्य करके लिखा है जो पग पग पर जीवन के अभावों में घुलते रहने पर भी घर से वाहर निकलते समय अपनी वेष-भूषा का विशेष ध्यान रखने को विवश हैं, क्योंकि वह सभ्य और शिष्ट कहलाने को वाध्य हैं। उन व्यापारियो और मिल-मालिकों की निष्ठुरता तथा स्वार्थपरायणता को मैं निश्चय ही नहीं भुला सकी हूँ, जो भूखी नगी जनता के ककालों को रौंद कर लखपति और करोड़पति बने रहने की साध मे गले तक डूबे हुए हैं।

अन्त में मेरी एक प्रार्थना सत्ता के सहयोगियों से और है, कि यदि उक्त सग्रह उन्हें कभी दीख पड़े तो वह सहानुभूति, न्याय और निष्पक्षता से इसका अवलोकन करें।

— होमवती

स्वप्न-भंग

कहने को तो गफूर कबाड़खाने की दूकान करता था और शहर भर में घूम घूम कर घर घर का कूड़ा कचरा समेट लाता था— टूटे-फूटे डिब्बे, छलनी हुए कनस्तर और फटे पुराने कम्बलों से लेकर रद्दी शीशियां, टूटी हुई साबुनदानी, ब्रुश, गन्दे शीशे इत्यादि ख़रीद ख़रीद कर बेचता रहता था। कभी कभी पुरानी मसहरियाँ और बरसातियाँ भी बेचता था वह। किन्तु प्रायः बढ़िया सामान भी उसके हाथ लग ही जाता था जो कि हिन्दू घरानों से अमीर लोग छोड़ देते थे या फिर मेम लोगों से झटक लाता था। बढ़िया किस्म के फूलदान, थर्मस, बच्चों की गाड़ियाँ, इत्यादि इत्यादि।

इधर कुछ दिनो से उसकी दुकान का काम और भी चेत गया था और आमदनी काफी बढ गई थी। क्योंकि पाकिस्तान जाने वाले लोग अपने अपने सामान के चौगुने पैसे बनाने की फिक्र में थे। गफूर कौडिया के मोल की चीजे रुपयो मे निकाल देने का दम भरता, और उसी को सब अपना अपना रद्दी से रद्दी सामान उठवा देने का दान करते थे। इस सामान मे टूटे हुये बर्तनो से लेकर खड़ाऊँ और जूतियाँ तक आती थी उसकी दूकान पर। पलग, बाजा, तबला, फुटबौल, लकडी के अन्य खिलौने तथा अनेक प्रकार की वह वस्तुएँ भी जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती, जैसे कि पुराने बुर्के और अन्य कपडों के साथ बाट तराजू, तक, लकडी की गन्दी डोइयाँ और टूटे हुये पिंजरे तथा गिलट और पीतल के गहने तक। विशेष रूप से पैंठ वाले दिन सैकडों वेचने वालों में गफूर की दूकान पर ही अधिक भीड लगी रहती और उस मीलों तक लम्बे बाजार मे सबसे अधिक बिक्री उसी की होती थी। जब कोई पाकिस्तानी यात्री पूछता— 'कहो मिया। क्या हाल है?' तभी गफूर झट से कह देता— 'खुदा का फजल है।' कारण— उसके अनेक परिचित हिन्दू घराने उस पर इतना अधिक विश्वास करते थे कि जो दाम उसने एक बार कह दिये बस वही ठीक हैं। गफूर की बात लौटना मानो अपने ही प्रति अन्याय करना है ऐसी धारणा उसके प्रति बन गई थी लोगों की।

ग्राहकों को खुश करना भी वह खूब जानता था। किसी के बच्चे को दो इलायची ही थमा देता और किसी के बैठने के लिये अपने ओढ़ने

की लोई ही झाड कर बिछाने लगता, और किसी के लिये झट पान ही लगवा लाने की चेष्टा करता। और इसी प्रकार सामान वेचने वालों को भी आश्वासन देता रहता— "अजी, इस फटी हुई दरी के टुकडे के कम से कम दो रुपये वसूल करके दिखलाऊंगा, यह टूटा हुआ पीकदान पूरे ढाई रुपये मे बिकेगा, और इन सैंडिलों पर तो दो पैसे की पालिश खर्च करने पर कोई भी ईसाइन खरीद लेगी" इत्यादि इत्यादि बातें सुनकर लोगों के मन में यह बात निश्चय रूप से जड़ पकड जाती थी कि गफूर निस्सदेह पाकिस्तान जाने से पहिले, उनके इस रद्दी खुद्दी सामान को वेचकर अच्छी खासी रकम उनके हाथ थमा देगा। और वहाँ ? वहाँ तो बहिश्त है बस, एक से एक बढिया सामान बिलकुल नया मिलेगा, सजी सजाई कोठिया, बढिया फर्नीचर और बिजली के पखे लगे हुए। दो चार खिदमतगार, चमकती हुई कारें और बड़े से बड़ा ओहदा. । इस पर शान यह कि सीमान्त की हूरें पान लगाएगी और जूता साफ करके पहनाया करेंगी. .. ! दो चार के मुँह से इसी प्रकार की बाते सुन सुन कर बहुतो ने अपना वह सामान भी वेचना शुरू कर दिया जिसे आसानी से ले जाया जा सकता था। जैसे— मुँह देखने के शीशे, प्याले और प्लेटें, छुरी-काटे, दुलाइयाँ और अचकनें, यहा तक कि बच्चों की कामदार टोपिया तक पैठ में बिकने आने लगीं। गफूर के मन मे रह रह कर तूफान सा उठने लगा— 'पाकिस्तान - ? ओ कैसा होगा. वह शहर ? जहाँ इतने लोग अपने घर द्वार और

कारबार छोड़कर उड़े जा रहे हैं, यह कोई बेवकूफ थोड़े ही हैं ? सभी पढ़े लिखे समझदार हैं। कहते हैं कि वहाँ बड़े बड़े बंगले और मकान मिलेंगे रहने को इन्हे, ऊँचे ऊँचे ओहदे मिलेंगे, आज जो तार बाबू से लेकर मामूली डाकिया है, वह कल पाकिस्तान पहुँचकर कलक्टर और कमिश्नर बन जायेगा। झोपड़ियों में रहने वालों को महल मिल जायेंगे, पैदल घिसटने वाले वहाँ मोटरों में उड़े फिरेंगे। एक हम हैं जो रात दिन झूठ सच बोलकर चार पैसे लेकर घर लौटते हैं। मँहगी के मारे नाकों दम है। हमीदन अलग जान खाए रहती है, कभी परीबद बनवा दो, तो कभी हार ? तो क्या दरकार वहाँ इन चीजों की ? वहा चादी के भाव सोना मिलेगा, और यहाँ पूरे साल भर जान खपाकर १॥ माशे का बुलाक बन पाया है बस.. । सुना है कि काग्रेस सरकार गरीबो के लिए अच्छे मकान बनवाएगी, मगर आखिर मकान तो मकान ही हैं। फूस का छप्पर न सही, टीन की चादरें डलवा देंगे, या छत ही पटवा दो, तो उससे क्या ? वहाँ की बड़ी बड़ी आलीशान कोठियो के सामने मकान की क्या औक़ात ? सड़क के किनारे अपनी दूकान लगाये वह यही सब सोच रहा था कि गफूर के मनोरम स्वप्न को भङ्ग करते हुए उसके मुहल्ले की बड़ी मस्जिद के मुल्ला जी बोले— "क्यों, ऊंघ रहे हो क्या ? मालूम होता है कि सब सामान निकाल चुके हो। यह थोड़ी सी रद्दी-खुद्दी चीजें पड़ी हैं बस ! लो जरा हमारी भी सुन लो। यह है तीतरों का पिंजरा, और कुछ सामान कल घर से ले आना, पर जरा दाम अच्छे उठाना म्या !"

गफूर जैसे आकाश से गिर पड़ा। "आप... आप भी बेचेंगे सामान, मुल्ला जी। यह क्या गजब हो रहा है, मस्जिद मे ताला डालकर जायेंगे आप ..., या किसी को रखकर .... ?"

"अरे, रखकर क्या करना है हमें, आप मरे जग परलो– चाहे जो हो, अपने वतन जाने की बात तय कर चुके हम तो ..." मुल्ला जी ने, तीतरो का पिंजरा उसके सामने रखते हुए कहा।

गफूर का सिर घूमने सा लगा— "अपना वतन ? वह अपना वतन है ? और यह, जहा पैदा हुए, खेले और बडे हुए, न जाने कितने बुजुर्ग यहा की मिट्टी में दबे पडे हैं ?" और फिर धीरे-धीरे उसकी आखों के सामने बाप की कब्र, मा की क़ब्र, बहिन और भाइयों की कब्रे, फिर अपने दोनों छोटे बच्चो की समाधिया घूम गई। इसके बाद इतने लम्बे चौडे कोसों तक लम्बे क़ब्रिस्तान.. ..., बड़ी-बड़ी आलीशान मस्जिदें, और मकबरे — सिनेमा के चलचित्रों के समान उसकी आखो के सामने नाचने लगे। और इसके बाद अपना घर, एक एक खिड़की और दरवाजा। दरवाजे मे बॅधी भैंस और उसकी कटिया भी दृष्टि के आगे तैरने लगी। बकरी तो उसने पिछले महीने ही खरीदी है, सामान ढोने का ठेला अभी नया बनवाया है... ?" गफूर की आखो के सामने अँधेरा सा छा गया। और वह जल्दी जल्दी सामान बक्सो में भरकर ठेले पर लादने लगा। साथियों ने पूछा— "क्या! चल दिए अभी से ?

अभी तो सूरज भी नही छिपा बहुत बजे होंगे तो तीन बजे का वक्त होगा बस . . . ?"

गफूर ने सामान को रस्सी से बाँधते हुए कहा— "यह तीतरों का पिंजरा अच्छा जान को आ पड़ा। इसे सँभालूँगा या अपना कुछ तिया पाचा करूँगा। दाना है नही इनके पास ? लो, तुम्हीं रख लो, कोई आ निकले खरीदार तो दे देना जितने मे पटे, पैसे मुल्ला जी को गिना देना. . . ।"

"क्यों तुम्हे क्या हुआ ?" रमजानी ने पिजरा थामते हुए पूछा।

"तबियत ठीक नहीं है।" कह कर वह जूता पहनने लगा। तभी जुम्मन ग्वाले का लड़का दौड़ता हुआ आया "यह तीतर कितने के हैं जी . . . ?"

"तू लेगा क्या ?" गफूर ने ठिठक कर उससे पूछा।

"क्यों ? लेगे क्यो नही तभी तो पूछ रहे हैं . . ?" लड़का अकड़ कर कहने लगा।

गफूर ने कहा— "काजी-मुल्ला तक पाकिस्तान जा रहे हैं, और तू सारी ज़िन्दगी यही पड़ा पड़ा ढोर चराता रहियो . . . सब वहीं पहुँचे जा रहे हैं. . . ।"

"जा रहे होंगे तुम जैसे, अब्बा ने तो यह कह दिया है— हम नहीं जाते— कौन जाए वहा भूखों मरने को, जाडे में सड़कों पर पडे-पडे

लाखो मर गए.. ला बता इनका क्या लेगा ?" पिंजरा उठाते हुए उसने कहा ।

"एँ, सड़कों पर पड़े पड़े मर गए, कौन कहता है रे तुझसे— वहा की बाते सुनी नहीं अभी तूने, वहा कोई गरीब नही रहेगा.. , बड़े बड़े आदमी जा रहे हैं, और तू ।"

"अच्छा तो चला जा तू भी , मत बता भइया, पैसे इनके... । मुझे तो देर हो रही है ।" कहता हुआ जुम्मन का लड़का खिसकने लगा। और गफूर उसे रोकने की चेष्टा करता हुआ पूछने लगा— "कौन कहता था तेरे अब्बा से ? बता तो . ।"

"अरे विस का क्या नाम है—'वह जो मकानों पर नम्बर डालता फिरता था, किसी का दामाद होकर आया है वहा .., बड़ी बुराई कर रहा था । बीबी तो रोते रोते विसकी बीमार होकर आई है... । ले आठ आने दू , इनके ?" लड़के ने अटी में से अठन्नी निकाल कर उसके सामने फेंक दी, और पिंजरा उठा लिया ।

"ना-ना आठ आने तो बहुत कम हैं, ठहर मै तुझे सस्ता ही दे दूं गा, सुन तो और क्या कहता था वे तेरे अब्बा से . ?" गफूर उद्विग्न सा हो उठा-- और जुम्मन का लड़का एक दुअन्नी और फेंककर चलता बना ।

हमीदन ने रात भर जलती हुई तेल की कुप्पी में फूंक मार कर, पति से कहा— "रात भर न सोए और न सोने दिया। तुम्हें तो बस पाकिस्तान के ख्वाब आते रहते हैं, दिमाग आसमान पर चढ़ा जा रहा है, न किसी की सुनते हो— न समझते हो। यह जो इतने लोग यहां चुपचाप पड़े खा कमा रहे हैं, यह सब पागल हैं? गरीबा की बहू कह रही थी कि वहां धोबियों की बड़ी जरूरत है, पर गरीबा ने साफ़ इन्कार कर दिया जाने से। उसके घर जो भिश्ती पानी भरने आता है, सुना है कि उसकी भतीजी का खाविन्द राशन के दफ्तर में नौकर था— बस तारीफ़ों के पुल बांध रक्खे थे लोगों ने— चला बिचारा बहक कर, अब परसों उसकी चिट्ठी आई है— तौबा-तौबा करके दिन काट रहे हैं, और वह घड़ी हाथ नहीं आ रही— जब सारा घर बार उजाड़ कर वहाँ गये थे। सुनते हैं कि किसी जगह भी रहने का ठिकाना नहीं मिला— यहां तक कि रोजाना सराय बदलते फिरते हैं, गए थे दलिया और पुलाव खाने, वहां मकी और ज्वार के भी फजीते हैं। लो उठो, दूध दुह लाओ— भैंस रम्भा रही है .... ।"

गफूर के हाथ पैरों का दम छूटा जा रहा था— दुविधा में रात आंखों में काटी थी और अब सिर पर बनियों का बोझा सा धरा था। बोला— "यह भैंस बड़ी बला बँधी है सिर, पूरे पांचसौ बीस रुपये में ली थी— अब न जाने इसका कोई क्या देगा.., बकरी भी बेकार है, नसीम अब टुकड़ा खाने लगी है... ।"

"सब बेकार हैं— तो क्या सारा घर लुटाने की फिक्र में हो ? भैंस क्या बुरी है— दो रुपये का दूध रोजाना बेचने के बाद भी इतना बच रहता है कि पिया भी नहीं जाता— और रोज सीमिया पकती है।" हमीदा ने बिस्तर लपेटते हुए कहा।

"पर हमीदन ! मैं तो खुद पाकिस्तान जाने की सोच रहा हूँ, यह जो पढे-लिखे लोग जा रहे हैं यह क्या बेवकूफ थोड़े ही हैं, वहा सुनते हैं कि बहिश्त है बस— देखो, यह मुल्ला जी भी जा रहे हैं, मस्जिद को घेरे बैठे रहें, या अपना आराम देखें ..., तू एक भैंस के मारे मरी जा रही है— और वहा सुनते हैं कि कुत्ते बिल्लियों की तरह गाय-भैंसे सड़कों पर मारी मारी फिरती रहती हैं– कोई पालने वाला नही मिलता।"

"हूँ, तो ये कहो कि पाकिस्तान जा रहे हो, अच्छा उठो— जाओ, पर खबरदार जो मेरे घर की एक भी चीज छुई तो..., खुदा का खौफ तो आज न काजी मे है, न मुल्ला में। तुम बैठे-बैठे ये मनसूबे गाँठा करो– भैंस मरी जा रही है, पंडित जी दूध लेने आते होंगे— मैं जुम्मन के लौंडे को बुलाने जा रही हू— दूध निकलवाने... ।" हमीदन ने बाल्टी उठा ली और गफूर ने झपट कर उसके मुँह पर खींचकर तमाचा लगाया— "तेरे जैसी तो कुतिया भी नही पालते वहा के लोग। देखता हूँ कौन रोकने वाला है मुझे, ले अभी कौडे करता हू सारे सामान के ?" और फिर वह घर की एक एक चीज निकालकर आगन में ढेर लगाने

लगा .. खाट-खटोले, चर्खा चक्की, लालटेन, पीढे, डोई -कपडे, जूते, सभी कुछ।

गृहिणी ने अपना सिर पीटकर शोर मचाना शुरू कर दिया— "दौडो कोई जल्दी से— यह तो बिलकुल पागल हो गया, अरे हमे मारे डाल रहा है, सारा घर बर्बाद किये दे रहा है, हाय मेरी बच्ची की जान बचाओ... ।" इत्यादि शोर सुनकर पास पड़ौस के सारे स्त्री-पुरुष इकट्ठे होने लगे, और साथ ही हमीदन का शोर और गफ़ूर की फुर्ती बढती गई। तभी मुल्ला जी और जुम्मन का लडका भी आपस में झगड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। जुम्मन ग्वाला बाहर खड़ा शोर मचा रहा था— "काजी मुल्ला भी ऐसी बाते करने लगे— भला बताओ तो लड़के ने तीतर मोल लिये हैं, या इनके घर मे से चुराकर ले आया है..., भई नक़द पैसे देकर लिये हैं। म्या पाकिस्तान जाने का ख्वाब देखकर सारे घर का सामान बेच दिये, और अब वापस मागने लगे। लो, हो आए साहब पाकिस्तान, जब वहा की कैफियत सुनी तो बस फिसल गए, देख लिया सबको, गरीबों को कौन पूछता है वहा? जूतिया चटखाते फिरते हैं वह जो यहाँ नवाब कहलाते थे। चल बे नसरू... !" कहकर उसने अपने लड़के को आवाज दी। नसरू अलग ही बिखर रहा था— गफ़ूर का हाथ पकड़ कर बोला— "बता पूरे दस आने दिये हैं या नहीं? तुझे, जब मुल्ला जी जा रहे थे, तब बेचने लगे और अब नही जा रहे तो लौटाने लगे..., यह भी कोई मज़ाक है.... ?"

गफ़ूर लड़की का गड्डलना फेंकने जा रहा था कि हाथ उठा का उठा ही रह गया— "कौन नहीं जा रहा रे— और कैसे दस आने दिये हैं तूने— किसे दिये हैं— ?" वह बोला।

"अच्छा तू भी झूठ बोलने लगा ? तेरा भी दिमाग ख़राब हो गया दीखता है, दिए नहीं तुझे कल— जब तीतर लिये थे— वाह क्या ! रात भर में ही दिमाग फिर गया।" नसरू कमर पर हाथ धरे टेढ़ी गर्दन किये कह रहा था, और गफ़ूर मुँह फाड़े तथा आखें फैलाये उसकी ओर देख रहा था— "अच्छा तमाशा है , मुल्ला जी भी नहीं जा रहे— और जो गए हैं— वे पछता रहे हैं।" पाकिस्तान और बहिश्त— तथा बड़ी-बड़ी आलीशान कोठिया और मोटरें— सब उसकी आखों से स्वप्नवत् भङ्ग होने लगीं। मुल्ला जी ने अपनी श्वेत बर्फ़ सी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा— "किसी की क्या मजाल है, हम नहीं जाते— कोई हमारा कर ले, क्या करता है। नहीं बेचते अपनी चीज...! लाओ तीतरों के बिना घर में कलह हो रही है, बच्चा रो रोकर मरा जा रहा है...।"

"पर मुल्ला जी, जिस तरह दुकानदार बेचा हुआ माल वापस करने में आनाकानी करता है— उसी तरह गाहक को भी हक़ होना चाहिये कि वह ख़रीदा हुआ सामान वापस न करे। यह आपके दस आने भेजना मैं भूल गया।" कहकर गफ़ूर ने दस आने पैसे अटी में से निकालकर

उनके हाथ पर रख दिये। मुहल्लेवाले गफूर की न्यायसंगत बातों से प्रसन्न होकर वाह वाह करते चले गये और हमीदा ने नसरू के हाथ में बाल्टी थमाते हुए कहा— "आध सेर दूध तुझे दूँगी ले आज तो भैंस दुहता जा।"

पर गफूर को यह कब मंजूर था कि उसकी भैंस के नीचे कोई दूसरा बैठे। नसरू से बाल्टी लेकर वह भैंस का दूध दुहने बैठ गया। लड़का मूँगफली खाता हुआ बाहर चला गया और हमीदा एक एक करके घर की सभी चीजें सँगवाने लगी। उस समय खूब धूप निकल आई थी और सब ओर उजाला फैल रहा था।

टी पार्टी

चौथी बार भी मि० चौहान ने पत्नी को पकड़ कर, कठपुतली के समान चारों ओर घुमाते हुए कहा— "नहीं अब भी साड़ी ठीक नहीं बंधी, जैसी होनी चाहिये। और देखो— वह आगे का पल्ला थोड़ा और लम्बा करो, पीछे से मैं ठीक किये देता हूँ, आगे के घूम ठीक करो तुम, कहीं ऊँचे और कहीं नीचे हो रहे हैं। हजार बार समझाने पर भी तुम से अभी तक ठीक साड़ी बाधनी नहीं आई। रात-दिन सिनेमा और जलसों में देखती रहती हो— न जाने दिमाग में कैसा गोबर भरा है। अरे। हम भी तो हैं— हमें किसने सिखाया है? सब देखते देखते आ जाता है। क्या मजाल जो किसी भी पार्टी में झेंपना पड़े। मगर यह तो शिष्टाचार के बिल्कुल विरुद्ध है कि मैं अकेला ही जाता रहूँ, जब बहुत से सपत्नीक शामिल होते हैं।" कहते हुये वह गौर से करनदेई की ओर देखने लगे। वह हक्की-बक्की-सी आँखें फाड़े पति का मुँह देख रही थी।

वह बोले— "सुनो, देखो बालों को इतना खींच कर बांधने का फैशन नहीं है। अब बाल अगर छोटे हों तो उसे क्या कहते हैं काले रंग का डाल कर नीचे तक गूँथ लेना चाहिये।"

"चुटीला", श्रीमती जी ने कहा।

"हाँ' 'हाँ वही, चुटीला ही से मतलब था मेरा। और सुना, माग मे सिंदूर कुछ ज्यादा मालूम होता है, काजल नीचे तक उतर आया है, बिना तम्बाकू खाये तो तुम्हारा काम ही नही चलता। हाँ दात कैसे खराब हो रहे हैं— ब्रुश लाकर दिया— पर कहती हो— घिन लगती है, चुभता है। तुम्हारी सभी बाते निराली हैं। जरा और फैलाओ ''' '' पाउडर जरा हल्का लगाना बेमालूम-सा' '। नाखून रँगने की तो खास जरूरत है नहीं, चाहो रग लो' '' लेकिन जल्दी करो। ठीक पांच बजे का वक्त है पार्टी का। ऐसा न हो कि सब लोग आ जाये तब हम पहुँचे। यह भी अनुशासन के खिलाफ है। सैन्डिल पहन कर ठीक से न चला जाय तो चॉकलेट रग वाली चप्पल ही पहन लेना। और देखो— चाय पीने का तरीका तो तुम्हें बहुत बार बतला ही चुका हू। जरा भी आवाज पीने के वक्त न हो, यह भी शिष्टाचार के खिलाफ है। बच्चा एक भी साथ नहीं जायेगा। बिन्नो से कहे देता हूँ कि यहीं छत पर या लॉन में खिलाती रहेगी— सब बहन भाइयों को''''''। अच्छा मै भी तैयार हो लूँ— सब समझ गईं न?"

मिस्टर चौहान श्रीमती जी को भले प्रकार समझाकर नीचे उतर आये, और वह भरसक यत्न करके पति की आज्ञा पालन करने में तन-मन से जुट गई। किन्तु किसी ने ठीक ही कहा है कि जल्दी का काम शैतान का होता है— अचानक साड़ी का पल्ला सिंदूर की शीशी पर जा पड़ा— बस वह नीचे आ पड़ी— तेल की प्याली में ठोकर ही लग गई। कघा छोटी मुन्नी लेकर भाग गई— उसके दो टुकडे कर डाले उसने। किवाड़ में हाथ लगा तो दो चूड़िया ही मौल गई, अभी पाँच मिनट पहिले ही तो साडी के मैच की पहनी थीं, और सबसे ज्यादा रंज था करनदेई को उस नये कालीन का जो नौकर होते ही उन्होंने पेशावर से मँगाया था। तमाम चिकना तो हो ही गया— ऊपर से सिदूर बिखर कर बडे-बडे लाल धब्बे भी जगह-जगह पड़ गये थे। गृहिणी सोचने लगीं— "यदि किसी प्रकार पल भर में वह उसे फिर ज्यों का त्यों कर सकती या फिर इसमें दियासलाई ही लगा सकती ····, वह देखेंगे तो खा ही जायँगे। बस आज तो ····। कैसे भाग खुले— भली सरकार बनी इनकी—- मेरी तो जान मुसीबत में आ गई, कभी ये करो तो कभी वो करो— आज ऐसे कपडे पहनो तो कल वैसे··· ··! इससे तो अपने गाँव में ही भली थी— सवेरे उठी और घर के धंधे से निवट कर ढोरों का दूध मँगवाया — गोवर पथवाया— और छाछ विलोने बैठ गई। रोटी-पानी का काम विधवा जिठानी ही निबट्य लेती थीं। वेला पर दूध पियो, चाहे छाछ।

"यहां इतने बडे शहर में क्या धरा है हमे ? बूँद-बूँद दूध को तरस गये— इस कोकोजम तेल की पूड़ियों से घर की भैंस के घी से चुपड़ी रोटी ही भली थी। चाय पीने से जी ऊपर को आता है— न जाने यह कैसे दिन भर चाय की धुन लगाये रहते हैं…… ! तभी तो सूख कर काँटा हो गये— बच्चों का भी यही हाल है— मुँह चिकना पेट खाली— चाय और डबल रोटी खिला-पिला कर नाश कर दिया सबका। जब जानसठ में मुख्त्यारी करते थे— तब देखो— खा-पीकर चार पैसे का गहना भी हर साल बनवा लेते थे। और अब ?

"जो कुछ बचा— चल बंक में, चल बंक मे। भला ऐसे गृहस्थी चलेगी क्या ? १६ बरस की एक सिर पर झूम रही है ब्याहने को— और चौदह की दूसरी— और छोटे-मोटे पाच अलग रहे। मोटर सरकार ने दे दी तो क्या हुआ— और सारे खर्चे ही नाक मे दम कर रहे हैं। रोज़ चार-छः चांय पीने वाले अलग डटे रहते हैं— जाने इन्हें अपने घर कुछ नही मिलता क्या ?"

करनदेई की विचारधारा का बाध सहसा टूट पड़ा— नीचे से साहब ने पुकारा— "आओ जल्दी …… !"

गृहिणी ने कालीन लपेट कर सन्दूक के पीछे ले जाकर फेंक दिया— और सिमरक की शीशी के टुकड़े खिड़की में से कोठी के पीछे डाल दिये। इसी खींचा-तानी मे माथे की बिंदी फैलकर नाक पर एक सीधी

लकीर तान गई। भौं पर भी लाली छा गई। जब मि० अजीतसिंह ने देखा तो आग बबूला हो गये— "न जाने किस कमबख्त घड़ी में तुम्हारा जन्म हुआ था— और किस मनहूस महूरत मे मेरे भाग जगे थे ······ चलो अन्दर ·· ·।" और फिर कमरे में ले जाकर वह मेज पर पडे मैले रुमाल से गृहिणी की बिंदी सँवारने लगे। बाहर खडे चपरासी और ड्राइवर एक दूसरे की ओर देखकर मुस्करा रहे थे। दोनों बच्चे अलग गला फाड़-फाड़कर चीख रहे थे। वह दोनों कार मे जा बैठे— कार पल भर में मन और शरीर मे सनसनी-सी फैलाती हुई कम्पनी गार्डेन की ओर उड़ चली।

बाग के दर्वाजे में पैर रखते ही अजीतसिंह ने अपनी सोने की चेन वाली घड़ी और सुनहरी फ्रेम के चश्मे को ठीक किया— कुरते की शिकन ठीक की— और तभी उन्हें ध्यान आया— "श्रीमती जी के हाथ में न वह बडा सा 'शातिनिकेतन' वाला बटुआ है जो अमीनाबाद से खरीदा था— और न रुमाल····।" तन-बदन मे आग-सी लग गई— "क्या बक्स मे बन्द करने के लिए लाकर दिया था— पूरे बीस रुपये में इन्हें ? बिन्नो की शादी की धुन मे मरी जा रही है। जैसे दूसरा नहीं आ सकेगा ··। और न रुमाल लाई साथ— क्या साड़ी से ही मुँह···· ?" पर करते क्या ? सैकड़ों की भीड़ में अब क्या कहते गृहिणी से। खून का ही घूँट पीकर छड़ी घुमाते हुए वह अन्दर चले गए।

(२)

टी पार्टी क्या थी ? मानो पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना की गई थी—आखिर बड़े-बड़े अफसर और पदाधिकारियों की दावत ठहरी, कब-कब ऐसा दिन आता है, नगर के सेठ-साहूकारों ने भविष्य की किसी आशा को हृदय में बाधकर जी खोलकर रुपया पानी की तरह बहाया था। पैसा इसी दिन के लिये तो झूँठ सच बोलकर, और जनता का तन-पेट काट कर चोर-बाजारी का कलंक माथे पर लगाकर कमाया जाता है।

काग्रेस गवर्नमेन्ट ने देश की ग़रीबी दूर करने का बीडा उठाया है। चोर-बाज़ार को जड़ से खोद कर मिटा डालने का प्रण किया है। किसी ने कहा है — "मुँह खाए आख लजाये।" तभी तो प्रधान मंत्री से लेकर क्लर्कों तक की दावत का आयोजन किया गया है, इतनी आफ़त मोल लेकर पैसे की जगह दस पैसे खर्च करके। विगत के मुनीम जी, "सेठ" हीरालाल आज शहर के अमीरों की नाक हैं। बढ़िया से बढ़िया सोफ़े और कुर्सियाँ क़रीने से सजाई गई हैं, भाँति-भाँति के वृक्षों की मनोहरता और फूलों से लदे पौधे और गमलों की क़तारें मन और आँखों को तृप्त किये डाल रही हैं। फिर रंग-बिरंगी साड़ियों में स्वर्ग की सी अप्सराएँ, सुन्दरी गृहिणिया अपने अपने पतियों के साथ और अन्य मित्रों के बीच चल रही हैं। सभी के मन में उल्लास है— और सभी के हृदय में आनन्द की लहरें उमड़ रही हैं। आज सभी बंधन-मुक्त हैं—सभी स्वतन्त्र हैं।

सदियों की गुलामी पैरों तले कुचल दी गई है— फिर नाना प्रकार के व्यंजन सम्मुख रक्खे गये हैं। देहली से हलवाई बुलाए गए थे— मोहन हलुए की टिकियों से लेकर बादाम पिश्ते के लौज तक चादी के वर्कों मे लपेट कर रक्खी गईं थीं। लखनऊ की मावे की "गिलौरी" और अलीगढ की "नुकुल" अलग ध्यान आकर्षित कर रही थी। नमकीन की कोई किस्म बाकी नहीं छोड़ी थी। फलो के तो ढेर लगे पडे थे। किसी को भी कहने की गुंजाइश नहीं थी कि अमुक वस्तु नहीं है। देखने वालों का क्या कहना, सुनने वालों के मुँह मे पानी भर आना सम्भव है। इस जमाने में जबकि बूँद भर तेल और गुड की डली तक नसीब नहीं होती लोगों को। ऐजेन्सियों का गला-सड़ा अनाज खाकर तन की शक्ति गँवा बैठे हैं सब। वह भी तो पेट भर नहीं मिल रहा। फिर दूध-घी तो स्वप्न हो रहा है। मिठाई और पकवानों की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती अब। फिर कहा वह दयनीय दशा— और कहा यह अपूर्व आयोजन। किन्तु इस आयोजन में भी जिनके भाग फूटे हैं, वह ऊब रहे हैं, दम घुटा-सा जा रहा है, और जी बैठने-सा लगा है।

करनदेई की घबराहट का कोई पारावार नहीं— "कहा आ फँसी? इन छैल-छबीली छोकड़ियों की उछल-कूद भाव-भंगी और छेड़-छाड़ को देखकर करनदेई को ढूँढे से भी कोई कोना ऐसा न मिला जहा एकात मे खड़ी होकर जी खोलकर दो सास ले सके।

आज उसने निश्चय कर लिया था कि वह अब आगे से अपनी लड़कियों का अंग्रेज़ी पढ़ना बन्द कर देगी, चाहे घर में कितना ही क्लेश क्यों न हो।

अजीतसिंह भी उपस्थित जन समुदाय के बीच मेज पर जा बैठे और उसी मेज़ पर एक अन्य जोड़ा आ डटा। वह थे पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी—मि० माथुर। अजीतसिंह ने एक बार उक्त श्रीमती जी की ओर दबी दृष्टि से देखा— और फिर खाली कुर्सी की ओर इशारा कर के करनदेई को घूरा। वह लजाती सकुचाती-सी सिर का आंचल थोड़ा आगे को सरकाती हुई वहाँ आ बैठी। मिसेज़ माथुर ने पल भर में प्यालियों में चाय ढालनी शुरू की— औरों ने भी मदद की— पर करनदेई पत्थर की शिला के समान बैठी रही। बिजली के पखों की तेज हवा में भी उसके वदन से पसीना चू रहा था, ब्लाउज़ इतनी चुस्त थी कि चट चट करके टाके टूटने लगे— उसका दम फूलने-सा लगा। "आग लगे इस फैशन में··" सोचते हुए उसे ध्यान आया— "हाय रुमाल तो भूल आई।" करनदेई ने सौगंध खाई अपनी गोद के लाल की— "वह अब कभी घर से बाहर पैर नहीं रक्खेगी।"

मिसेज माथुर ने एक चम्मच भर चीनी उसकी चाय में छोड़ कर पूछा— "और ······?" पर "करनदेई" ने हाथ के संकेत से मना कर दिया। रसगुल्ला, पेड़े की मिठाई, लौज़, मठरी, केला, शंतरा और सरदा ······ एक एक करके सभी चीज़ों को मना करती गई वह।

अजीतसिंह का रोम रोम जल उठा— "बड़ी असभ्य है यह, शिष्टाचार तो छू भी नहीं गया।" पर कहें क्या इस मौके पर। बोले— "इनकी तबियत कई दिन से ठीक नहीं है— चली ही आई बस······" और फिर घर जाकर भरपूर बदला लेने की बात उन्होंने भले प्रकार याद करली।

करनदेई ने काँपते हाथों से प्याला उठाया— और ओठों से लगा लिया। आज उसके दुर्भाग्य का ओर-छोर नहीं था। पहिले भी तो दो एक बार वह पार्टी में गई है — परन्तु आज तो आरम्भ से ही असगुन दीख रहे थे। कालीन खराब होने के ध्यानमात्र से सहसा उसके बदन में कँप कँपी-सी आ गई— और घूँट भरने के साथ ही उबलती चाय मुँह मे छाले डालती हुई साड़ी पर गिर गई। हाथ का प्याला मेज पर रख कर वह साड़ी को झाड़ने लगी। मि० अजीतसिंह ने तुरत रुमाल जेब से खींचकर उसके ऊपर फेंक दिया। मिसेज़ माथुर अपने खूबसूरत रेशमी रूमाल से साड़ी को साफ़ करने खाते खाते खड़ी हो गईं। करनदेई को ऐसा लगा मानो वह धरती में गड़ी जा रही है। अगर धरती ही फट जाती इस समय— तो वह सीता के समान इसी में समा जाती— तब देखती कि यह इन सातों बच्चों को कैसे सँभालते हैं?

सहसा सभी पास बैठने वालों का ध्यान उधर खिंच गया। करनदेई ने फिर प्याला हाथ में नहीं उठाया। चाय समाप्त हो गई, और वह कार में आ बैठी— ड्राइवर से कहा— "पहिले मुझे घर छोड़

आओ•••।" अजीतसिंह मित्रों से हाथ मिलाने में व्यस्त रहे और वह घर आ पड़ी।

अजीतसिंह जब घर लौटे तो उन्होंने 'पोर्च' से ही गृहिणी को पुकारा— "यहाँ सुनना जी।" किन्तु उधर से कोई उत्तर नहीं मिला। रसोई में जाकर देखा— उनका नौकर रणधीर चूल्हे के पास बैठा ऊँघ रहा है— थाली में आटा गूँथा पड़ा है जिस पर हजारों मक्खियाँ भिन-भिना रही हैं। कमरे में गए— देखा गृहिणी बक्स में कपड़े लगा रही है। गृहस्वामी ने कड़क कर कहा— "तुम्हारी यह बेहूदगियाँ अब हद से ज़्यादा बढ़ती जा रही हैं, मुझे चार जनों में मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा तुमने— औरतें ख़ाली इसीलिये नहीं होतीं कि चौका-चूल्हा करती रहें बस, उसके लिए हमने दो दो नौकर रख छोड़े हैं•••••, तुम्हें बाहर भीतर आने जाने की— सभा सोसाइटियों में मूव करने की तमीज सीखनी चाहिये— पार्टियों का तरीक़ा समझना चाहिये— अब ऐसे काम नहीं चलने का•••••, अगर यहाँ रहना है तो••••••। और देखो परसों मि० बागला के यहाँ पार्टी है••••••"

करनदेई ने बहुत शान्तिपूर्वक पति का वक्तव्य सुना और संक्षेप में उत्तर दिया— "लेकिन मैं तो आज ही— अभी घर जा रही हूँ••••••"

पति का मुँह खुला का खुला ही रह गया— वह विस्फारित आँखों से पत्नी की ओर देखते रहे। तभी फजुआ चौधरी ने आकर कहा— "ताँगा आ गया•••••"

उपहार

रेखा को पढाते पढ़ाते मास्टर साहब प्रेम-विभोर हो उठे। राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन और कवित्त के अर्थ को व्यक्त करते करते विरह की व्याख्या में उनकी आँखें भर आईं। रेखा मंत्र-मुग्धा-सी देखती रह गई, फिर उसने बड़े साहस से पूछा— "क्यों, क्या बात है?"

"कुछ नहीं, तुम अपना काम करो।" मास्टर साहब ने आँसू पोंछते हुए करुण स्वर से कहा। पर बालिका की बुद्धि में कुछ भी नहीं आया कि और अब क्या काम करे। वह काम ही तो कर रही थी। पढ़ना ही तो उस समय उसके सामने काम था।

मास्टर साहब का हृदय बड़ा कोमल है। वह स्वयं कवि और बड़े भावुक हैं। इतना सब तो रेखा जानती थी, किन्तु कोई भी पुरुष अकारण ही किसी नारी के सामने इतना कातर हो सकता है, यह सब उसने नही समझा था। सुदर्शन की "कवि की स्त्री" कहानी और मधुसूदन बाबू द्वारा रचित "गुरु-पत्नी"— तारा की चन्द्रमा के प्रति भावनाओं की बहुत बार मास्टर साहब ने व्याख्या की है, वह गद्‌गद् हो उठे हैं, किन्तु... किन्तु आज तो उनकी विह्वलता सीमा को पार कर गई। बालिका भी निरीह बालिका नहीं है। कॉलेज में पढ़ती है। युवती हो चली है। वह इतनी मूर्खा थोड़े ही है अब।

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। कई बार एक दूसरे ने मन की गहराई को परस्पर पार करना चाहा। तभी घड़ी ने टन-टन करके नौ बजा दिए। एक बार दोनों ने घड़ी की ओर देखा। खाना खाने का समय बहुत पीछे छूट चुका था। घर में दूध लाओ; मीठा ज़रा कम डालना; रेखा ने अभी खाना भी नहीं खाया— इत्यादि कोलाहल मचा हुआ था। गृहिणी ने बड़े गम्भीर स्वर में कहा— "मास्टर जल्दी नहीं करता। पढ़ाता खूब है।"

मास्टर साहब मन पर पत्थर-सा रक्खे, कमरे से बाहर निकल आए।

रेखा ने घर में आकर कह दिया— "मुझे आज भूख नहीं है। सिर बड़ा दुख रहा है।"

माँ ने "अमृताञ्जन" की शीशी खोलते हुए कहा— "मेहनत ज़्यादा मत कर। तन्दुरुस्ती का भी तो ख्याल रखना चाहिये।"

"पर पढ़ने से थोड़े ही दर्द हुआ है, अम्मा! वैसे ही हो गया है।" कहकर रेखा ने करवट बदल ली।

माँ ने कह दिया– "हाँ हवा लग गई होगी, सर्दी काफ़ी है।"

किन्तु रेखा मे तनिक भी शक्ति न रह गई थी तर्क-वितर्क करने की। उसका रोम-रोम जला जा रहा था। मानो वह कुछ भूलना चाहती है, पर भूल नही सकती, बल्कि इस यत्न मे उसका धीरज और भी छूटा जा रहा है, हृदय जैसे बैठा जा रहा है। मन पर भारी बोझ का अनुभव होने लगा उसे। फिर भी वह यत्नशील है। वह भारतीय ललना है। भले घर की लड़की है। उसकी और बहने भी तो पढ़ी-लिखी हैं, किन्तु वह किसी के बारे मे क्या जाने? आज उसका मन तो न जाने कैसा हो रहा है!

एक बार उसने निश्चय किया, कल से वह स्वय पढेगी। पिता से कहेगी, मुझे मास्टर की जरूरत नहीं है। किन्तु . किन्तु क्या वह कोर्स पूरा कर सकेगी? इस प्रकार कोन समझाएगा उसे? और मास्टर साहब क्या समझेंगे? वह उसे कितने यत्न से पढाते हैं। डेढ घण्टे का ट्यूशन और तीन घण्टे से कम तो किसी दिन नहीं बैठते। वह कभी छुट्टी नहीं लेते— चाहे त्यौहार ही क्यों न हो। कितने विनम्र हैं! और कोई

मास्टर ऐसा करता या न करता, किन्तु वह स्वयं निबन्ध लिख लाते हैं मेरे लिए। जो मैं लिखती हूँ, उसे ठीक करने के लिए ले जाते हैं अपने घर। मानो उन्हें यह अवश्य करना है— चाहे स्कूल के समय ही मे क्यों न करे। लगता है, जैसे उनका यत्न दिन-दिन बढता ही जा रहा है। यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो सकता कि मेरे बदले में वही 'पेपर' कर आते, तो वह इतना भी अवश्य करते। पर क्या सभी मास्टर ऐसे होते हैं ...... ?

रेखा न जाने कब तक इसी विचार मे डूबी रहती, किन्तु माँ ने उसकी भावनाओं को सहसा झकझोर डाला। बोली— "कहे तो आधा नीबू लाऊँ, नमक-मिर्च लगाकर। जी कुछ ठीक हो जाएगा।"

"नही। सिर फटा जा रहा है। अभी कुछ आँखे लगी थीं। तुमने जगा ही दिया।" कहकर रेखा ने फिर करवट बदली, और माँ अपराधिनी की भाँति खड़ी की खड़ी रह गई।

—२—

मास्टर साहब ने जैसे ही कमरे का दरवाजा खोला, तो देखा कि बच्चे सोए पडे हैं और गृहिणी उनकी प्रतीक्षा मे दीवार से सटी ऊँघ रही है। "आज मैं खाना नहीं खाऊँगा। दूध है क्या ?" कहते हुए कालीपद बाबू ने चादर कधे से उतारकर खूँटी पर डाल दी और स्वय बिस्तर पर बैठ गए। "आज कुछ पल्पिटेशन-सा हो रहा है। तबीअत ठीक नहीं है।" कहकर उन्होंने तकिए का सहारा ले लिया।

कला ने घड़ी की ओर दृष्टि डालकर कहा— "कितने घंटे पढ़ाते हो ? साढ़े नौ बज गए हैं। वैसे कहते हो, तबीअत ठीक नहीं। घर में आते ही तबीअत खराब ......" और वह दूध का गिलास लाकर सामने खड़ी हो गई।

मास्टर साहब ने एक बार सिर से पैर तक कला को देखा। उनकी समस्त सौन्दर्य-भावना बालू में बनाए चित्र के समान एक ही झोंके में उड़ गई— यही है रूप, यही है सौन्दर्य ! छिः ! उन्हें कला का साँवला रंग एक दम काला जँचा और कपोलों की उभरी हुई हड्डियाँ तथा गढे में धँसी आँखें अजीब बेढङ्गी मालूम हुईं।

कला ने दूध का गिलास और भी पास करते हुए कहा— "लो, ठण्डा हुआ जा रहा है।"

मास्टर साहब ने दूध थामते हुए कह दिया— "जाओ, सो रहो अब।"

गृहिणी का शरीर जलने-सा लगा— इन्हें अब भी अवकाश नहीं है ? बोली— "घर में न दाल का दाना है और न अनाज का। लकड़ियों के लिए चार दिन से बराबर कह रही हूँ। कल सामान आए बिना खाना न बन सकेगा।"

"हाँ हाँ, सुन लिया, बस। सामान इस वक्त तो आने से रहा !" कहते हुए कालीपद बाबू लिहाफ ऊपर लेकर लेट रहे। गृहिणी ने एक

एक करके चारों बच्चों को घसीट कर बराबर वाले कमरे में डाल दिया और फिर धम्म से कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

प्रेम के प्रतिकार में की गई अवज्ञा मृत्यु से भी अधिक भयानक और पाहन से भी अधिक कठोर होती है। कला को घंटों हो गए जागते जागते। आँखे पत्थर हो गईं। नींद का नाम नहीं। रात-दिन तेली के बैल के समान पिलती रहती है, फिर भी मुँह से दो मीठे बोल तक सुनने को नहीं मिलते। चार चार बच्चे छाती पर धर दिये। इन्हें क्या नहीं चाहिये— खाना-कपड़ा, जूता-छाता, किताब-कापी, पेंसिल-कलम। रात-दिन उसकी छाती पर चढ़े रहते हैं। कहाँ से करे वह, कौन देता है उसे पैसा? दो-चार रुपये तीज त्योहार पर माँ भेज देती है। वे भी इन्हीं की भेंट चढ़ जाते हैं। महीनों हो जाते हैं, कभी चार चूड़ियाँ बदलने की नौबत नहीं आती। जो कुछ कमाते हैं, उससे पेट ही नहीं पाटे जाते, कपड़ा तो दूर रहा। पूरे छः साल हो गए। आग लगे इस महँगी में— घर का गहना तक बेच-बेच कर खा गये। और, मैने ही अपने हाथ से उतार-उतार कर दे दिया। फिर भी यह फल मिलता है कि सीधे मुँह बात नहीं करते। इन्हें कौन हूर परी मिल जाती? मिल भी जाती, तो रात-दिन अपने हाथ-पैर ही निरखती रहती— चार चँदिया भी मुश्किल से टेंक कर देती। यहाँ चौका-बर्तन तक खुद घसीटना पड़ता है। नौकर रखना आजकल हँसी-खेल थोड़े ही है। जितना खुद कमाते हैं, सब देकर भी नौकर के खर्चे का पूरा नहीं पड़ेगा। ट्यूशन-

ट्यूशन ? रात-दिन वही फेर रहता है। न जाने क्या करते हैं वहां ? घर में आते हैं खाते फाड़ते ... और ... और बाहर ?

कला को शुरू से आज तक की एक-एक बात याद आने लगी। क्या-क्या अरमान लेकर वह इस घर में आई थी। पहले जो कुछ भी थोड़ा-बहुत लाड़-प्यार था, धीरे-धीरे सब पर धूल पड़ गई। दिन में दस दफे तो उस लौंडिया की चिट्ठी आती रहती है। ऐसे रहते हैं जैसे पागल ...। मुँह सूखा रहता है और रंग पड़ गया है एक दम काला स्याह। ट्यूशन भी इन्हें लड़कियों के ही मिलते हैं या ' फिर ' टाली। कला का मन सुलगने-सा लगा।

खिड़की में से जाड़े की तीखी और ठंडी हवा लगने से बच्चे कुल-बुला रहे थे। उसने एक बार उधर देखा और उपेक्षा से मुँह फेर लिया। परन्तु माँ का हृदय अधिक सहन न कर सका और उसने फटे हुए लिहाफ़ को खींच-तान कर पास-पास सोये तीनों बच्चों के ऊपर डाल दिया।

बड़े लड़के ने तभी माँ से कहा—"अम्मा ! सुन नहीं रही, बाबूजी पानी माँग रहे हैं।"

वह उठी और गिलास-भर पानी नल से भरकर पति के सिराहने धरी मेज पर रख आई। फिर उसने मन-ही-मन सोचा, क्या इन्हें भी नींद नहीं आई ? दिन-भर जान लड़ाए फिरते हैं। न खाने का होश,

न सोने का समय। इतना पढ़ने-लिखने के बाद भी बरसों पढ़ाते-पढ़ाते हो गये, कुल सौ रुपए ही महँगी सहित मिलते हैं। कला को ध्यान आया, उसके पति के साथ पढ़े हुए आज डिपुटी कलक्टर भी हैं और वकील, मु सिफ भी। यह उसी के भाग्य का दोष है, बस, और क्या कहे?

नारी का हृदय धीरे-धीरे मोम के समान पिघलने लगा। वह पति की शुभकामना करती हुई सोचने लगी, यह बने रहें, बस। रूखी-सूखी खाकर ही दिन काट लेंगे। सदा ऐसी महँगी थोड़े ही रहेगी। पहले पचास मिलते थे, तब भी पेट भर जाता था; अब सौ भी थोड़े हैं। सस्ता होता तो यही बहुत दीखते। फिर वह मन-ही-मन घर का हिसाब जोड़ती हुई पति के पास जाकर बोली— "लाओ, सिर दबा दूँ।"

"न।" कहकर कालीपद बाबू ने सिर से लिहाफ लपेट लिया। आज सचमुच ही उन्हें जरा देर के लिए भी नींद नहीं आई थी।

कला वापस आकर बिस्तर पर पड़ रही। कालीपद अपने विचारों को केन्द्र-- रेखा— के बारे में सोचते रहे। उसे किसी दिन 'भ्रमरदूत' के दो-चार पद सुनाने का लोभ वह किसी प्रकार मन से नहीं हटा सके। तुरन्त उठ कर आलमारी खोली और अगले दिन 'भ्रमरदूत' साथ ले जाने का निश्चय करके, पुस्तक निकाल कर मेज पर रख दी और फिर वही उधेड़-बुन उनके मस्तिष्क में तूफान-सा उठाने लगी। उन्हें पता नहीं, कब वह सोए।

सुबह जब उठे तो हाथ-पैर ही क्या, सारा शरीर टूटा-सा जा रहा था। उस दिन स्कूल पढाने भी नही गये। परन्तु शाम को जब वह रेखा के घर जाने का साहस कर वहाँ पहुँचे, तो मालूम हुआ– "आज दिल्ली से उसे देखने के लिये कुछ लोग आए हुए हैं। अब तो वह कल ही पढ सकेगी।" मास्टर साहब का दिल बैठने-सा लगा— जैसे अब दो कदम भी चलना उनके बस का नहीं रहा। चक्कर आ रहा था। जी घबराने लगा। तभी देखा, रेखा उन्हें सकेत से पिछले बरामदे की ओर बुला रही है। उसकी आँखें फूल-सी रही हैं और चेहरा और भी सफेद पड गया है, मानो महीनों की बीमार हो।

मास्टर साहब ने आज से पहले कभी इतने गर्व का अनुभव किया हो, ऐसा एक दिन भी उन्हें इस समय याद नहीं आया। तो क्या रेखा भी उन्हे 'उनसे प्रेम'''? आगे की बात सोचने मे वह कुछ कटने से लगे और अपराधी के समान सिर झुकाए उसके सामने जाकर खडे हो गये।

युवती बालिका ने केवल इतना कहा— "कल प्रातः ही सब लोग जा रहे हैं। आ सकें तो सुबह आठ बजे आइए। गाने की छुट्टी कर दूँगी।"

मास्टर साहब ने तृषित नेत्रों से एक बार सिर से पैर तक बालिका को देखा और फिर तेज़ी के साथ बॅगले से बाहर निकल आए। उस

समय उन्हें ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह किसी का सर्वस्व चुराकर अथवा किसी की हत्या करके भागे चले जा रहे हों।

घर आकर देखा, तो कला उनके कपड़ों मे साबुन लगाए खूब पीट-पीटकर धो रही है और शायद इसी क्रिया में उसके एक हाथ की सारी चूड़ियाँ भी मौल गई हैं। साथ ही उन्हें ध्यान आया, इतनी रात को कपडे धो रही है? पर आगे जैसे कुछ भी सोचने का अवकाश नहीं था।

कला ने पूछा— "आज पढाने नहीं गये क्या?"

उन्होंने तुरन्त ही चालित यत्र के समान कह डाला— "नहीं।"

—३—

रेखा ने दूसरी श्रेणी मे ससम्मान एफ० ए० पास कर लिया। तय हुआ कि बी० ए० बाद में होता रहेगा। अच्छा घर-वर मिल रहा है। कल कौन जाने क्या हो? सौ वैरी सिर पर मँडरा रहे हैं। रिश्ते अनेक ढूँढे पर हाथ से निकल गए। अब तो जाड़ो मे विवाह कर ही देना चाहिए। रेखा ने बहुत हाथ-पैर पीटे, पर उसके माँ-बाप जैसे पत्थर पर लकीर खींचे बैठे थे। लड़की की एक भी बात न मानकर वह विवाह की तैयारी मे जुट गए। रेखा का मन नहीं लगता था— और शायद जी लगाने के लिए ही उसने मास्टर साहब से गीता और रामायण पढ़ना शुरू कर दिया था। माँ ने सोचा, उसकी लड़की कैसी सतजुगी है? जब

से रिश्ता हुआ है, दिन-दिन घुलती जा रही है। मुझे छोड़कर न जाने कैसे रहेगी ससुराल मे ?

सखी-सहेलियाँ छेड़ने लगी— "सोच मत करो। अब तो थोड़े ही दिन रह गये। अभी से यह हाल है। वहाँ जाकर तो कभी स्वप्न मे भी हमें देखना पसन्द नही करोगी।"

पर रेखा ? उसके मन की तो वही जाने। अब तो कोई दिन ऐसा नही जाता, जिस दिन वह दिन मे दो-चार बार रो न लेती हो। माँ समझाती हैं, पिता बहुत तसल्ली देते हैं। मास्टर साहब से भी उसका रोना नही देखा जाता। वह अक्सर स्वय रो पड़ते है, पर करे क्या ? रेखा तो बताशे के समान रात दिन घुलती जा रही है।

उसने एक बार उस नवयुवक की ओर देखा भी तो नही, जो अपने जीवन की सगिनी बनाने के लिये एक बार उसे आकर देख गया है। वह डिपुटी कलक्टर है। अमीर बाप का बेटा है। उसे बराबर पत्र भी लिखता है। पर रेखा कभी बेमन से उत्तर दे देती है, कभी वह भी नही। वह अपना भविष्य बनाना चाहती है, पर जैसे कोई उसके चित्रों को तुरन्त मिटा डालता है, उसके ससार को लूट लेता है।

धीरे-धीरे छः मास बीत गये। लगते अगहन की अष्टमी का दिन उसके सौभाग्य की सूचना देता निकट आ गया। रेखा ने बान-तेल, उबटन कुछ नही कराया। सब ने कह दिया— यह बुढियों के ढकोसले

हैं। आज-कल की पढ़ी लिखी लड़कियां कब पसन्द करती हैं यह बुढ़िया-पुराण ?

घर के सभी स्त्री-पुरुष, नौकर-चाकर, अतिथि और अभ्यागत अनेक कार्यों में व्यस्त थे। रेखा को सखियाँ उसे सजाने में व्यस्त थीं। जितनी भी सुन्दर वह उसे बना सकें, उसी रूप में वह दूल्हे के गले में वरमाला डालने जायगी। गुलाब के फूलों के बीच गोटा लगा-लगा कर हार गूंथा गया। पिताजी ने पूरे हज़ार का कठा बम्बई से मँगाया। लेकिन यह रेखा, दूल्हे को बरोठी पर क्या केवल फूलों का हार ही पहनाएगी ?

जड़ाऊ और मोतियों के गहनों से लदी हुई रेखा, जब हलके मोतिया रंग की भारी बनारसी साड़ी पहन कर तैयार हुई, तो मानो साक्षात् रति और लक्ष्मी ही भूतल पर आई हो। माँ ने राई-नोन उसके ऊपर से उतार कर फेंक दिया। सहपाठिनियों ने उसकी बलइयाँ लीं। तभी गाजे-बाजे के साथ दूल्हा बरोठी पर आ खड़ा हुआ। रेखा मथर गति से सखियों के बीच 'माला' डालने चली — मानो बेहोशी की हालत में उसे कोई खींचे लिये जा रहा हो, और फिर उसे अनुभव हुआ कि किसी ने सहसा उसके दोनों हाथ ऊपर उठाकर, झुके हुए मस्तक में माला डलवा दी। तभी न जाने कैसे पल भर के लिए बालिका की सुन्दर और कजरौरी आँखें उसी की आँखों से जा मिलीं, जो उसके भविष्य का भाग्य था। बालिका का रोम रोम सिहर उठा— 'इतना रूप और तेज! आज तक

उसने नहीं देखा... कैसे बलिष्ठ अङ्ग और सौम्य आकृति !' जैसे उसे कुछ स्मरण हो आया और वह पृथिवी मे गड़ी-सी जा रही थी। उसे लगा, मानो जूठन भरा थाल लेकर वह देवता को चढाने गई थी। कमरे मे आकर वह पलग पर पड़ रही। थोड़ी देर में फेरे होने वाले थे। माँ ने मुँह जुटाने का आग्रह किया। सारा घर दौड पड़ा। पिस्ते की लौज, समोसा, मलाई का लड्डू— किसी चीज़ का भी एक कण लड़की मुँह में डाल ले। पर उसे कुछ भी खाने की इच्छा नहीं थी। उसका दम घुटा-सा जा रहा था। फिर भी सब ने देखा, रेखा के चेहरे पर अपूर्व सौन्दर्य के साथ अपार सन्तोष के चिह्न स्पष्ट दीख रहे हैं।

अगले दिन उसकी विदा थी। अनेक प्रकार के गहने, कपडे, बर्तन और फ़र्नीचर पिता ने बडे चाव से उसके लिये खरीदे थे। बहुत से मित्र भाँति भाँति के उपहार उनकी लड़की को देने के लिये लाये थे। रेखा की सहेलियों ने चुन-चुन कर बढिया-से-बढिया चीजे उसे भेंट-स्वरूप दी थीं। मास्टर साहब भी पिछला सारा दिन उसके उपयुक्त तथा अपनी सामर्थ्य के अनुकूल उपहार खोजने मे व्यस्त रहे। बड़े परिश्रम और विचार के बाद उन्होंने बहुत बढिया "लैटर पैड" तथा लिफ़ाफ़ों का एक सेट खरीदा। फिर हजारों डिजाइनों मे से उन्हे एक भी ऐसा नही जँचा, जो उस पर छपाया जाता। आखिर उन्होंने स्वय एक चित्र बना कर प्रेस वालों को दिया— सुनहरे अक्षरों मे पैड तथा लिफ़ाफ़ों पर छापने के लिए। एक सुन्दर चिड़िया चोंच मे लिफ़ाफ़ा दबाए उड़ी जा रही है। लिफाफे पर

लिखा है— "प्रेमोपहार", और ठीक उसके सामने नन्ही-सी डाल पर बैठा उत्सुक चिरौटा आकाश की ओर देखता हुआ दूसरे कोने पर था। मास्टर साहब का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा— अपनी सूझ और सफलता के अतिरिक्त रेखा के मन के करुणा-भरे उल्लास की कल्पना में।

पैड तथा लिफ़ाफ़ों को 'बटर पेपर' में सुघराई से लपेटकर उन्होंने रेशमी फीते से बाँध दिया, और रेखा को भेंट करने के बाद ही घर लौटने का निश्चय किया।

लान में सैंकड़ों ही घराती और बराती उपस्थित थे। भाँति-भाँति के वस्त्र आभूषण लड़के वाले की ओर से किश्तियों, थालों और परातों में सजाये जा रहे थे। सामने वाले बरामदे में लड़की वाले की ओर से दिया गया सामान मेजों पर सजा पड़ा था। पिता के अनेक मित्रों और रेखा की अनेक सखियों के उपहारों पर 'नेम कार्ड' लगे हुए थे। साड़ियाँ, गहने, चाँदी के बर्तन और सलमे के काम की चप्पलों से लेकर सीने की मशीन और प्यानो तक उपहार में आए थे। पिता और ससुर के घर के सामान का तो कहना ही क्या ?

मास्टर साहब चुपचाप करंडी में पैड लपेटे कोठी में चले तो आये, परन्तु उन्हें ऐसा लगा, मानो वह चोरी करने या डाका डालने अथवा किसी की हत्या करने जा रहे हों। फिर इतने बड़े लोगों के बीच अपने को प्रकट करने में जो संकोच और हीनता का अनुभव उन्हें हो

रहा था, उससे अधिक लज्जा थी उन बहुमूल्य उपहारों के बीच उस पैंड के प्रकट करने मे, जिसे आज सारा शहर छानकर वह पूरे ५॥ रु० मे खरीद कर छुपा लाये हैं। परन्तु उनकी कलाप्रियता और सूझ की दाद दिये बिना रेखा तो कदापि नहीं रह सकती।

उन्होंने धीरे-धीरे आगे बढ़ कर गृहस्वामी और परिचितो से नमस्कार किया , किन्तु आज किसे अवकाश था ? बराती लोग विदा की जल्दी मे उतावले हो उठे थे और घर वाले सब अत्यन्त व्यस्त थे। मास्टर साहब को बैठने का साहस नहीं हुआ और न अपने लाए उपहार को देने की हिम्मत हुई। उनका धैर्य छूटने लगा और वह इधर से उधर टहलने को बाध्य हो गये। इसमे भी उन्हें अशिष्टता का अनुभव हो रहा था। कोई टोक न दे, कोई कुछ कह न बैठे ··· ?

सहसा अन्दर से पकवान का टोकरा सिर पर लादे उन्हें घर का महरा दीख पड़ा। जब वह अन्य सामान के निकट टोकरा रखकर वापस जाने लगा, तो मास्टर साहब ने लपक कर उसे संकेत से बुलाते हुए कहा— 'यह रेखा बीबी को दे देना।" और चादर में लिपटा पैंड वह निकालने लगे।

महरा ने जल्दी से उत्तर दिया— "जमाई बाबू के साथ वह क्या सामने ही आगन में पलंग पर बैठी हैं। क्या वहीं दे दूँ ?"

मास्टर साहब की दृष्टि अनायास ही सामने की ओर उठ गई। देखा, बहुत सी कुलवधुओं के बीच रेखा, पति की बगल में नीची दृष्टि किए बैठी है। उसके रूप की सीमा नहीं और हृदय का उल्लास जैसे रोम-रोम से फूटा पड रहा है। पास ही बैठा युवक भी मानो साक्षात् कामदेव की छवि छीन लाया है। उनके पैरों के नीचे की पृथिवी खिसकने-सी लगी और सिर मे चक्कर आने लगा। वह उलटे पैर घर की ओर भागे।

गृहिणी छत पर बैठी सब्जी छील रही थी और बच्चे एक-दूसरे से झगड़ने मे व्यस्त थे। सूरज डूब चुका था और पक्षी नीडो की ओर उडे जा रहे थे। उन्होंने एक शब्द भी नही कहा और कमरे मे घुस गए। कधे से चादर उतार कर फेक दी और बिस्तर पर जा लेटे।

कला ने धीरे-धीरे कमरे मे प्रवेश कर पूछा— "क्या बनाऊँ— कच्ची रसोई या परावठे ? जी कैसा है ? आज तो बड़ी देर से लौटे ?"

कालीपद बाबू ने संक्षेप में कह दिया— "काम ज्यादा था आज। जो मन हो, बना लो।"

और अगले दिन प्रातः जब वह सोकर उठे तो देखा, गृहिणी ने उनकी करंडी की तह बनाकर खूँटी पर टाग दी है और वह हाथ मे पैड थामे उलट-पलट कर देख रही है। पति को जगा देख कर बोली— "इसका क्या होगा ? बड़ा महँगा मिला होगा ?"

जब वह सलवार के ऊपर बनियान पहन कर सड़क पर चलती है तो राह चलते हुए पथिक सहसा ठिठक कर उसे सिर से पैर तक देखने लगते हैं और जब वह पतलून के ऊपर रुई की जाकट अथवा जाँघिये के के साथ एड़ी तक लम्बा कुरता अथवा फ्राक पहन कर आती है, तब घरों के अन्य नौकर अपने-अपने हाथ का काम छोड़ कर खिलखिला उठते हैं। इस हँसी मे घर के मालिक-मालकिन तथा बच्चे भी सहयोग दिये बिना नहीं रह सकते। पर कल्लो को जैसे किसी से कुछ लेना देना नहीं, अपने काम से ही काम रहता है उसे तो।

न हर्ष न शोक, न राजी और न नाराजी। बल्कि इससे उल्टा यह होता कि जब आस-पास के लोग उस पर व्यंगोक्तियाँ कसते, तो वह और भी ज़ोर-ज़ोर से बर्तन रगड़ना शुरू कर देती, या कपड़ों को और भी

जीवन-क्रम

यह जो दस-बारह साल की लडकी सुबह से रात तक घर-घर चौका-बर्तन और झाड़ू-बुहारी का काम यन्त्र के समान करती फिरती है, इसका नाम कल्लो है, बस।

वास्तव मे कल्लो उतनी काली नहीं है, आँख-नाक भी सुघर हैं, पर रग-ढग इसके बडे अजीब हैं। सिर पर जो यह एक-एक बालिश्त लंबे बाल हैं, यह तेल कघी बिना उलझ-उलझ कर जूना हो गए हैं और अब इन्हे जटा कहने मे जरा भी अतिशयोक्ति न होगी। आँखो को प्रायः बडी-बडी होने पर भी दीडे गंदा किये रहती हैं और मुँह भी चिपकता-सा रहता है। ऐसी ही उसकी वेष भूषा रहती है। इधर-उधर से जो कपडे उसे दान स्वरूप सेवा के बदले मे मिलते रहते है, उनका भी कोई सिल-सिला नहीं होता। कहीं से उसे जाड़ो की कड़कड़ाती सर्दी मे जाली की फटी चीथड़ा बनियाइन मिल जाती है और किसी घर से अंगारे बरसाती हुई गर्मी मे रुई की मैली और बिना बटनों की जाकट प्राप्त हो जाती है। यही उसके अङ्ग ढकने के साधन हैं जिन्हे वह समय असमय शरीर से लपेटे रहती है।

जब वह सलवार के ऊपर बनियान पहन कर सड़क पर चलती है तो राह चलते हुए पथिक सहसा ठिठक कर उसे सिर से पैर तक देखने लगते हैं और जब वह पतलून के ऊपर रुई की जाकट अथवा जाँघिये के के साथ एड़ी तक लम्बा कुरता अथवा फ्राक पहन कर आती है, तब घरो के अन्य नौकर अपने-अपने हाथ का काम छोड़ कर खिलखिला उठते हैं। इस हँसी मे घर के मालिक-मालकिन तथा बच्चे भी सहयोग दिये बिना नहीं रह सकते। पर कल्लो को जैसे किसी से कुछ लेना देना नही, अपने काम से ही काम रहता है उसे तो।

न हर्ष न शोक, न राजी और न नाराजी। बल्कि इससे उल्टा यह होता कि जब आस पास के लोग उस पर व्यगोक्तियाँ कसते, तो वह और भी जोर-जोर से बर्तन रगड़ना शुरू कर देती, या कपड़ों को और भी धमाधम कूटने लगती। झाड़ू लगाती होती तो चार ही हाथ मे सारा आँगन बुहार डालती और कभी पत्थर की शिला के समान बिना किसी बात के भी खड़ी की खड़ी रह जाती, तब क्या मजाल जो कोई उससे एक गिलास पानी भी प्राप्त कर सके, अथवा एक तिनका भी उठवा सके। चाहे धरती चल जाए पर कल्लो टस से मस नहीं हो सकती, न उसे इसकी चिन्ता रहती है कि कब कौन उससे राजी है या कौन कब नाराज है। उसे जैसा भाता है, करती है।

कभी-कभी कल्लो हँसती भी है, उस घर में, जहाँ उसे छाछ मिल जाती है या कभी रोटी पराठे के टुकड़े के साथ गुड़ की डली मिल जाती

है; किन्तु उसे रोते किसी ने कभी नहीं देखा। एक दो बार रास्ता चलते लड़के उसे छेड़ने लगते हैं और यहाँ तक कि ईंट-पत्थर से भी उसके ऊपर प्रहार कर बैठते हैं। पर कल्लो बहते हुए खून को चुपचाप पानी से धोकर, मिल गई तो मैली कुचैली कत्तर लपेट कर, फिर काम मे लग जाती है। न किसी की शिकायत से उसे मतलब और न किसी की प्रशंसा से काम।

वैसे वह काम बहुत करती है। अभी किसी ने कहा : 'कल्लो, पानी लाओ एक गिलास।' और तभी दूसरा कह उठा : 'पीकदान रख जा री यहाँ।' इतने में गृहिणी चिल्ला उठी : 'घंटो हो गए चाय पिये, अभी तक बर्तन साफ नहीं कर पाई।' आदि आदि वाक्यों की गोलियाँ सी छूटती रहती हैं उसके ऊपर, किन्तु वह ठीक उसी प्रकार डटी रहती है जैसे कोई चट्टान हो; यहाँ तक कि वह किसी की ओर देखती भी नहीं। कभी-कभी उसकी यह बात बहुत बुरी भी लगती है। कारण, जब कोई उससे पानी, पान या कोई चीज माँगता है, तब वह अक्सर मुँह दूसरी तरफ फेर कर वह वस्तु पकड़ा देगी, उसे इस बात से कोई मतलब नहीं कि लेने वाले ने गिलास ठीक से पकड़ लिया या नहीं। पानों की तश्तरी थाम ली या नहीं। चाहे उसकी तरफ़ से फर्श खराब हो या किसी के कपडे, अथवा सोने का बिस्तर, किन्तु हमेशा वह मुँह दूसरी तरफ करके चीज पकड़ायेगी। लेने वाला यदि सावधान नहीं होगा तो अवश्य ही कोई दुर्घटना हुए बिना न रहेगी।

कल्लो को कोई चिन्ता नहीं। कोई डाँटता है तो डाँटे, झिड़कता है तो झिड़कता रहे, वह चल देगी मुँह फेर कर। इसलिये और लोग ही सावधान रहने के आदी हो गए हैं। क्या करें महँगी का जमाना और नौकरों का अकाल, कैसे भी हो दिन तो कटें। फिर कल्लो जैसी नौकर, सस्ती और हर काम करने को तैयार, थोड़ी ढीठ है तो क्या हुआ, काम तो करती ही है।

मानो कोई त्यौहार आ गया, तो घर की लड़कियाँ उसे जरा सी मेंहदी लगाने को दे देंगी, या दो चार पुरानी उतरी हुई चूड़ियाँ थमा देंगी, और कल्लो इसी लालच में बहुत सी मेंहदी खूब रगड़-रगड़ कर पीस देगी। दो कचौरियों के लालच में खूब दाल पीस देगी और फिर भी अगर कोई न देगा तो वह नाराज नहीं होगी। कभी-कभी उसे बासी और सूखे हुए पान का टुकड़ा मिल जाये तो कितने ही पान जरूरत बिना ही लगाकर डाल देगी और यदि उसका मन न होगा तो उसके जिम्मे जो बर्तन मलने आदि का काम है, उसे भी उल्टा-पुल्टा करके चुपके से आँखों में धूल झोंक कर भाग जाएगी। फिर दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवे घर यही सिलसिला।

इसीलिये सुबह छः बजे से लेकर रात के दस बजे तक कल्लो मशीन की तरह घूमती रहती है— पता नहीं वह थकती है या नहीं। बीमार तो वह शायद होती ही नहीं। या उसकी बीमारी का किसी को पता ही नहीं चलता, क्योंकि वह नागा कभी नहीं करती। मान लो कि कभी उसके

पेट या सिर मे दर्द है तो इससे क्या ? काम उसे करना है, करेगी। वह जो बुढ़िया हर महीने इसका वेतन इकट्ठा करने के लिये दूसरी-तीसरी तारीख को घर-घर झाँक आती है, उसे किसी बात से कोई मतलब नहीं। उल्टी दो-चार शिकायतें सुनकर कल्लो ही को डाँट जाती है, 'काम ठीक से करा कर, तेरी काया तो चलती ही नही, रात भर घुर्र-घुर्र करके सोती है, फिर दिन में काम क्यों नहीं होता ?' इत्यादि, इत्यादि।

वेतन प्राप्ति के समय बुढ़िया एक बात का और भी ध्यान करती है। उस दिन यदि उसके माँगने पर किसी ने दाल नहीं दी, खिचड़ी के लिये चावलों को मना कर दिया अथवा धोती या जम्फर माँगने पर कह दिया कि 'इस समय है नहीं।' तो बुढ़िया इस अवज्ञा की पूर्ति कल्लो के द्वारा कराने में नहीं चूकेगी। वह चुपके से पेड की आड़ मे खडे होकर, या दीवार के पीछे छिप कर कह देगी कल्लो से कि 'इनके घर बहुत देर मत लगाया कर, रात को घर जल्दी लौटा कर।' और तब कल्लो दो-चार दिन उक्त परिवार को खूब तंग करने की चेष्टा करती रहेगी, परन्तु उसे दादी से क्या मिलता है ? और मालिकों से क्या ? इसका निर्णय स्वयं करके पुनः ठीक हो जाती है। जैसे उसके लेखे सब व्यर्थ हो गया, दादी का कहना मानना भी और मालिकों की उपेक्षा करना भी।

•

बहुत तंग आकर जब कोई कह देता है कि 'हम, बुढिया, अब इतनी लापरवाही बरदाश्त नहीं कर सकते, दूसरा इन्तजाम करेंगे .....।'

तब बुढिया सचेत होकर एक दो बार महीने मे स्वयं भी चक्कर लगा जाती है, पर उसकी नित नई फ़रमाइशें लोगों को इतना तग कर देती हैं कि खुद कह देना पड़ता है : 'बुढिया तू क्यों हैरान होती है।' लेकिन कभी-कभी इस लड़की के ऊपर बड़ी दया भी आती है। सर्दी की ठडी हवा, बारिश और गर्मियों की झुलसाती हुई लुओं में घूमते-घूमते इसकी खाल भैंस के चमडे जैसी कठोर हो गई है, तन पर न ढग का कपडा, न पेट को रोटी, तिस पर रात दिन काम काम, बस काम ही तो है इसे। कैसा निराधार और अभागा जीवन है इसका।

इसी पृथ्वी पर मनुष्य पशु से भी बदतर है और पशु इन्सान से भी भाग्यशाली, जैसे कि बडे आदमियों के कुत्ते, जो मालिकों के साथ बैठकर मोटरों में भागे फिरते हैं।

... .

उस दिन होली थी और घर-घर काम की अधिकता। कल्लो को कैसा त्योहार! आज सब दिन से अधिक काम, और सब दिन से अधिक गदी और भूखी थी वह। दोपहर को बुढिया बड़ी सी टोकरी सिर पर धरे घर घर त्योहारी इकट्ठी करती फिरती थी। बूढ़ी होने पर भी दो-चार गहने पहने थी, कपडे भी साफ थे, आँखों मे काजल लगा था, और पैरों में कलकतिया सलीपर भी पहने थी।

आँगन में बैठकर उसने त्यौहारी माँगी, और मैंने आठ कचौरी उसकी डलिया मे डालते हुए कहा— 'बुढिया। इस कल्लो के तन पर तू कभी ढग का एक चिथडा भी नहीं डालती। रात-दिन खून पसीना एक करके यह तुझे महीने में पूरे ३०) रुपये कमा कर देती है और तू हम लोगों के दिये हुए कपडे भी सहेज-सहेज कर रखती जाती है। इसे बेमेल और बेढंगे कपडे पहनने को देती है।'

बुढिया ने आँखें मटकाते हुए और सिर खुजलाते हुए कहा— 'कपडे कौन ऐसे देता है बीबी जी! यह करती है तो क्या? खाती भी तो है सेर पक्का......। लाओ अब चलूँ, घर का सारा धंधा समेटने को पडा है। इसका तो मुझे रत्ती भर भी सुख नहीं। सारा दिन इधर ही खेल-कूद मे गँवा देती है यह। क्या करूँ, किसी तरह इसे निभा रही हूँ, मेरी छाती पर मूँग दलने को छोड़ गई इसे ...।'

मैने कहा— 'कौन छोड कर चली गई है इसे?'

बोली— 'बहू......। उसकी बहिन की लडकी है यह, खुद चार महीने से पीहर मे पड़ी है इसकी मौसी।'

मैंने बुढिया को सिर से पैर तक देखकर पूछा— 'तो इसके माँ-बाप नहीं हैं क्या?'

बोली— 'मर गए सब......। चाचा चाची हें, सारी जमीन और घर के वही मालिक हैं अब तो। इसका एक भैया था और एक बहिन

इससे छोटी और थी; सो कल खत आया है, वे दोनों भी माता मे मर गए, माता निकली थी बड़ी...।'

मैंने एक बार कल्लो की ओर देखा और एक बार इस निर्मम बुढ़िया की ओर। बुढ़िया सिर पर टोकरी धरे बाहर निकल गई थी और कल्लो पतीली की तली को ईंट से रगड़ रगड़ कर स्याही छुड़ाने का यत्न कर रही थी। जैसे जो होना था वह हो चुका और जो होता है वह होकर रहेगा, जीवन के क्रम मे किसी बात से कोई अन्तर नहीं पड़ता। पानी मे पत्थर फेकने से पल भर को लहरे उठ खड़ी होती हैं और फिर सब ज्यों का त्यों सम हो जाता है।

"मीरा की जात"

मिनिस्टर साहब ने ऊपर से लेकर नीचे तक के सारे बगले की बत्तियाँ जलाकर भले प्रकार एक एक कमरे, बरामदे, गुसलखाने और . और पाखानो का निरीक्षण कर डाला। किसमें कितने रोशन-दान हैं, कहाँ कितनी खिड़कियां हैं, फ़र्नीचर बिलकुल नया और चमक-दार है, हर एक कमरे म 'मार्बिल' का फर्श है, बरामदो मे 'टाइल्स' जडे हैं, और 'बाथरूम' तथा 'लैटरीन' मे तो चीनी के ऐसे बढिया 'टाइल्स' लगे हैं कि चाहो तो मुँह देख लो। इतना ही नहीं, 'स्याह क़लम' के खूबसूरत पुष्प-पात्रा में जो सुगधित पुष्प अपनी निराली छटा बखेर रहे हैं— वह मानो अभी अभी स्वर्ग-वाटिका से चुन चुन कर सजाए गए हैं। दरी, क़ालीनों और मखमल तथा 'सैटिन' की गद्दियों का तो कहना ही क्या ? पायदान तक इतने बढिया हैं कि उठा कर चूम लेने का मन होने लगता है। कॉर्निस पर सजे हुए सॅगमरमर के खिलौने, शृङ्गार-मेज, 'चैस्टर ड्रॉर', बिलकुल नए कॅबोड, चमकती हुई श्वेत बर्फ सी मिलफचियाँ, ओह! क्या क्या देखे— और समझें ? मानो सशरीर स्वर्ग में आ खडे हुए हों! 'सीलिग फैन' की तेज़ हवा जैसे आकाश मे उड़ाए लिए जा रही हो ..।

"वाह, वाह !" कह कर मिनिस्टर साहब ने गृहिणी को पुकारा— "जरा सुनना जी .., देखना तुम्हारे लिए कौनसा 'सैट' ठीक रहेगा ? हाँ , 'ड्रेसिंग टेबिल' तो कई हैं यहाँ, एक—दो—तीन—चार, लो चार हैं, तुम चाहो नो एक कपडे बदलने के कमरे में रहने दो और दूसरी खाने के कमरे में रखवा दी जाए। दो तो हमें चाहिएँ— एक बाहर बरामदे में तो रखनी ही पडेगी, क्योंकि अग्रेजी कायदा यही है, आने जाने वालो के लिए, दूसरी हमारे कमरे में रहेगी ही।"

"ना, अगरेजी क़ायदा-वायदा कुछ नहीं, मुझे तो रसोई में जरूर रखनी है एक मेज, उस पर मसाले वसाले रक्खे रहेंगे ..।" रम्भो ने पति की बात का विरोध करते हुए कहा।

पर मिनिस्टर साहब की समझ में कुछ ठीक नहीं बैठी यह बात। बोले— "चलो देखें रसोई में कोई आला-वाला है या नहीं। अलमारी तो होगी ही, उसी में मसाले वसाले रखवा लेना , लेकिन हाँ— साग वगैरा रखने के लिये तो चौके में चाहिए ही मेज। चाय वगैरा के बर्तन रखने के लिए भी ज़रूरत होगी। खैर वहाँ से और आ जायेगी मेजें, इस वक्त जो चाहो रखवा लो ...।" कहते हुए वह जैसे ही कमरे से बाहर निकलने लगे कि सहसा बरामदे मे रक्खी सिलफची में ठोकर लगी— मिनिस्टर साहब ने उछल कर उसे उठा लिया— "ओह, अभी टूटी होती ।" और फिर बाहर पड़ी कुर्सी पर सिलफ़ची को रखते हुए वह मोटर गराज तथा नौकरों के क्वार्टर

देखने चले गए। इस समय उन्हें न जाने क्यों, सहसा जेल जीवन के 'सी' क्लास की याद हो आई, और उसी समय साँवलदास ने निश्चय किया कि वह कौंसिल मे इस आशय का एक प्रस्ताव अवश्य पास कराके छोड़ेंगे कि 'सी' क्लास मे लोहे के तसलों के बजाय ऐसी ही सिलफचियाँ क़ैदियो को दी जाएँ, जैसी कि उनके बँगले मे रक्खी गई हैं।"

रम्पो ने पति की विचार-धारा पर आघात करते हुए कहा — "लल्ला के लिये एक गाड़ी भी मँगा लेना। सभी बडे आदमियों के बच्चे गाडी मे घूमने जाते हैं, तुम भी लिख कर मँगा लो एक।"

"लिख कर ? अरे लिखना क्या ? वह तो खरीदनी पडेगी। तन-ख्वाह मिलने दो, तब सोचेंगे गाड़ी की बात ...।"— साहब ने उत्तर दिया।

[२]

साहब अँगड़ाई लेकर बिस्तर पर सीधे होकर बैठ गए। बासी मुँह मे चिपचिपाहट के कारण होठों पर दाँतों के स्पर्श से तार से छूट रहे थे, और आँखों के कोओं की ढीड़ें भी साफ नहीं कर पाए थे कि रामप्यारी ने लोटा भर 'बैड टी' स्टूल पर ला धरी— "लो, जल्दी पी लो। कुछ ठडी सी हो गई। फुल्लू ने लोटा पानी की बाल्टी मे ही रख दिया। बेवकूफ़ ने समझा कि दूध की तरह चाय भी ठडी करनी चाहिये।"

"अच्छा लाओ .., कोई 'प्याला पिर्च' नहीं है क्या ?" साँवलदास ने पट्टी के पास खिसकते हुए कहा।

"कहां है ? एक बाहर था, वो भी फुल्ला ने तोड़ डाला ·····। अब और निकालते हुए यही डर लगता है कि एक २ करके यह सभी तोड़ डालेगा। ठहरो, गिलास ला रही हूँ।" कहती हुई रम्पो रसोई-घर की ओर दौड़ गई। साहब ने तुरन्त निश्चय किया— "पहली तनग्वाह मिलते ही सबसे पहले एक दो "टी सैट" जरूर खरीद के घर में डाल देंगे, फिर चाहे जो हो।"

अभी वह चाय सुटक ही रहे थे कि गृहिणी ने दो मिस्सी रोटियों पर खूब सा घी चुपड़ कर और आलू के साग पर खूब सी हरी मिर्च तथा प्याज कतर कर उनके सामने थाली ला धरी।

"सब कहते हैं कि खाली चाय नुक़सान करती है, दो टुकडे खाकर घूँट भरो।" रामप्यारी ने कहा।

"वाह, 'बैड टी' के साथ कुछ खाने का रिवाज थोडे ही है ? तुम भी नई २ बातें करती रहती हो। लेकिन इतनी जल्दी रोटी तैयार कर ली तुमने, बस कमाल है।" साहब ने मुँह में ग्रास रखते हुए कहा।

"वाह, जल्दी क्या ? रात ही चूल्हे में दो उपले दबा दिए थे, बस, आग ज्यों की त्यो निकली, फुल्लू बेवकूफ़ चूल्हा ही सकेरे दे रहा था।

कोई पूछे उल्लू से कि राख न होती तो आग कैसे बनी रहती? और फिर राख का खर्च क्या थोड़ा है? बर्तन चाहे एक दफे को ना भी मंजें, पर लल्ला की छिच्छी उठाने को तो दिन भर चाहिए।" कहती हुई रामप्यारी पति के पास बैठ कर नाश्ता करने लगी। तभी टन २ करके बाहर घंटी बज उठी, चपरासी ने साहब को सलाम देकर कहा— "कोई साहब मिलने आए हैं, हुजूर से।"

"कौन साहब? कौन हैं, कहाँ से आए हैं, क्या काम है, सब बातें मालूम करनी चाहिए थीं तुम्हें?" साहब ने त्योरी चढा कर चपरासी को घूरते हुए कहा।

"तो फिर यह सब पूछ आएँ उनसे?" चपरासी हाथ जोड़ कर बोला।

"और मैं क्या बक रहा हूँ इतनी देर से।" वह बोले। चपरासी काँपता हुआ बाहर जाने लगा। तभी साँवलदास ने उसे रोक कर पूछा— "साइकिल पर आया है या पैदल या 'कार' में?"

"साइकिल पर ही आए हैं सरकार! वह क्या अभी घंटी दी थी?"

"अच्छा ठहरो, कहना कि इस वक्त नहीं मिल सकते।" फिर पत्नी की ओर देख कर बोले— "कह देना नाश्ता कर रहे हैं .....। ठीक है न?"

"और क्या?" रामप्यारी ने मुँह का ग्रास चबाते हुए कहा।

दो मिनिट बाद चपरासी वापस आकर बोला— "कहते हैं कि जेल मे साथ रहे हैं हुजूर के, बहुत अच्छी तरह जानते हैं सरकार को, नाम कुछ ऐसा ही बताया ·· , रामचरन कि रामपरसाद ·· ·।"

"ओ, रामफल, ना ना, रामफल तो हमारे मामा का लड़का है। ठीक, रामपरसाद शर्मा होंगे, आए होंगे किसी नौकरी वौकरी के चक्कर में, या, कोई एजेंसी लेना चाहते होंगे। कह देना कि तबियत कुछ खराब है, मिल नहीं सकते, डाक्टरों ने मना कर दिया है।" साहब ने ठडी सुन्न चाय का घूँट भरते हुए कहा।

चपरासी अब को बाहर से ही हाथ जोड़े आकर बोला— "हुजूर। अजीब आदमी है। कहता है कि जेल में मेरा कम्बल जो लिया था ओढने को, सो ला दो, भला आप ··· ·· ?"

"हाँ ··आँ ·, कहो कि फिर मिलेगा– घर भूल आए, या कहीं पड़ा होगा ·· ··, देखेंगे ···, जाओ।" साँवलदास ने पलँग से उठते हुए कहा, "अब हम फराकत जा रहे हैं।"

गृहिणी ने उन्हें बीच ही में रोक कर कहा– "दे दूँ न, वही कम्बल होगा जिसमें तुम्हारा बिस्तर बँध कर आया है, कहते थे न कि यह हमारे जेल के साथी का है ?"

"हा—हा, वही, वही तो है, दे दो, चाहे फिर दे देना। एक 'होल्डौल' और खरीदना है हमें।"

"फिर क्या ? दिए दे रही हूँ। बिचारे को जरूरत होगी।" कह कर वह आँगन की ओर चली गई। फुल्लू ने धूप में सोफा डाल कर उसी पर कम्बल बिछा रक्खा था। रम्पो ने कम्बल उतार कर फेंकते हुए कहा— "ले जा दे दे उसे, बाहर खड़ा है कम्बलवाला।" और स्वयं सोफे पर लल्ला को लिटा कर उसके बदन मे सरसों का तेल चुपड़ने लगी।

[२]

आज सभी के मन में बड़ा उल्लास था, सभी के हृदय में उमगें भरी थीं, सदियों की गुलामी से छुटकारा मिला था। मनुष्य ही क्या ? मानो पशु पक्षी तक स्वतन्त्रता की स्वॉसे ले रहे थे। नगर की गली गली तिरंगे झण्डों से पाट दी गई थी, घर घर और दुकान दुकान पर दिये सजाए जा रहे थे। शहर के मुख्य मुख्य बाजारों में अनेक प्रकार की झॉकियॉ मनोरम दृश्यों में बनाई गई थीं। कहीं महात्मा गाधी की प्रार्थना का दृश्य था, तो किसी ने जवाहरलाल नेहरू को ही सुन्दर वाटिका के मध्य खड़ा कर रक्खा था। कहीं सरोजनी नायडू विराजमान थीं, तो कही सरदार पटेल और मौलाना आजाद ही खडे मुस्करा रहे थे। बडे बडे झाड़-फानूसों के बीच बाजारों में बिजली के पखे और गैस के हडे लटकाए गए थे। नगर की सजावट देख कर ऐसा आभास मिल रहा था मानो भूतल पर स्वर्ग की रचना की गई हो।

दूसरी ओर परेड के मदान का दृश्य भी अनुपम था, अपनी ही सरकार थी, अपने ही सिपाही, अपनी ही फ़ौजे, और अपने ही मिनिस्टर। प्रातःकाल से ही जन-समुदाय समुद्र की भाँति परेड के मैदान की ओर बढा जा रहा था। तागों, रिक्शाओं, कारो और गाड़िया का ताँता लगा हुआ था। पैदल चलनेवाले यात्रियों का तो कहना ही क्या? कोई गाती हुई टोली बढ़ी जा रही है, तो कोई महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू की जय के नारों से ही आकाश-मडल को गुजायमान करते जा रहे हैं। कहीं पर बच्चे खिलौनो पर मचल रहे हैं तो कोई मिठाई खरीदने मे व्यस्त है। यह दशा थी लोगों की कि एक दूसरे से आगे बढ़ने का यत्न हर कोई कर रहा था। सभी एक दूसरे से होड़ लगाए मिनिस्टर साहब के दर्शनों को उमडे जा रहे थे, और अपनी अपनी रुचि के अनुसार अनुमान लगा रहे थे कि कौन आएगा, किसके हाथों इस नगर का झण्डा फहराया जायेगा, कौन इस अपार सेना का अभिवादन स्वीकार करेगा। किसी ने कहा— अमुक पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी आयेंगे यहाँ, किसी ने कहा— अमुक मिनिस्टर पधारेंगे आज तो......, इत्यादि चर्चाएँ नए नए नामो के साथ चल रहीं थीं। थोडी देर बाद मि० साँवलदास मिनिस्टर की चमकती हुई 'कार' मैदान का चक्कर लगाती हुई मच के पास पहुँच गई। वह सपरिवार 'कार' से उतर कर, छड़ी घुमाते हुए, उँगलियों में सिगरेट दबाए, मच की ओर बढे। सफ़ेद चूड़ीदार

पायजामे और कमीज़ पर काले पट्टू की जाकट उनके उपयुक्त ही जँच रही थी। लोगों की कल्पना पर सहसा तुषार सा पड़ गया। फिर भी आवश्यक कार्रवाई तो होनी ही थी। फौज ने सलामी दी। पुलिस ने अभिवादन किया, पर जनता बिलकुल मौन और स्तब्ध खड़ी सोच रही थी— "शायद मुखारविन्द से ही निकले शब्दों से आत्मा को सुख मिले, मन को थोड़ा आश्वासन प्राप्त हो।"

मिनिस्टर साहब ने अपना काली और सफ़ेद पट्टीवाला 'शू' मच पर पटक कर कहा— "मै आज इस स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में आप लोगों के सामने आकर खड़ा हुआ हूँ। मैं आप लोगो के सामने कुछ कहता, पर दुर्भाग्य से अपना लिखित भाषण भूल आया। समय भी काफी हो गया। आशा है कि आप लोग इस झडे का मान रखते हुए मुझे क्षमा करेंगे······।" इत्यादि इत्यादि शब्दो से जनता को सन्तुष्ट करते हुए वह 'कार' मे जा बैठे। और तभी गृहिणी ने अपनी मुर्शिदाबादी छींट की रेशमी साड़ी का पल्ला उलट कर गोद के बच्चे को दिखलाते हुए कहा— "देखा, कहते रहते हो कि आजकल का फ़ैशन बच्चों को नौकर और चपरासी के पास छोड़ कर जाने का है। लल्ला की आँखे रोते रोते कैसी सूजी पड़ी हैं, सारा काजल बह कर मुँह पर फैल गया। देना जरा रूमाल, मुँह पोंछ दूँ इसका।"

साहब ने जेब से रूमाल निकाल कर पत्नी के ऊपर डाल दिया। रामप्यारी ने बच्चे का मुँह पोंछ कर जैसे ही मुँह में भरी पान की पीक

बाहर थूकी, वैसे ही 'कार' की खिड़की और खिड़की के शीशे पर लाल लाल बिन्दु छलक पड़े। उसने जल्दी से पति की आँख बचा कर रूमाल से पीक के छींटे साफ़ कर दिए। फिर बोली— "तुम्हारा यह जूता तो जरा भी नहीं खिलता। देखते नहीं सब लोग कैसे तरह तरह के नए फ़ैशन के जूते पहरे रहते हैं ?"

मिनिस्टर साहब ने बहुत सक्षेप में उत्तर दिया— "यह ताऊ ने जेल में भेजा था, अपने हाथ से बना कर। चलो, 'सरकिट हाउस' में चल कर दूसरा बदल लेंगे।" पर इस समय उनका हृदय द्रुत वेग से धड़क रहा था क्या पता गर्मी के कारण या यह अतुल जन-समुदाय देख कर।

गृहिणी ने बालक को आँचल में लपेटते हुए कहा— "मीरा की जात बोली थी, लल्ला की आँखें आ गई थीं तब। लाओ, जात देते ही चले। फिर कौन आएगा इतनी दूर से . ? आज फिर इसका माथा गरम सा हो रहा है, देई देवताओं को नाराज करना ठीक नहीं है ... ।"

साँवलदास स्त्री की बात सुन कर सचेत से हो उठे— "जात ? जात देने जाओगी अब ? पर मुझे तो कल पहुँच जाना चाहिये वहाँ। फिर देखा जायगा जात-बात का ।" कहकर उन्होंने बच्चे का माथा छू कर देखा— सचमुच ही तवा सा तप रहा था सिर। बोले— "धूप बड़ी तेज है, इसीलिए गरम हो रहा है बदन। चलो, सिविल सर्जन को बुला कर दिखला देंगे .. .., शाम तक ठीक हो जायगा।"

"ना, भला सिविल सर्जन क्या करेगा इसमें ? यह सब मीरा की करामात है। बस, अभी चल कर कढ़ाई करूँगी। मीठे पूड़े और अठावड़ी बना कर तैयार करनी हैं बस। उसमे देर ही कितनी लगेगी ? जब तक तुम दिसा फराकत से निबटोगे, तब तक सब तैयार हो जायेगा। चपरासी लल्ला को थामे रहेगा और फुल्लू मेरे साथ काम करा लेगा। बस एक रात मीरा के थान पर बस कर सीधे चले चलना।" रम्पो ने दृढता से कहा।

"भला यह कैसे हो सकता है ? तुम भी न जाने कहाँ के दकियानूसी खयाल रखती हो। नए फैशन मे कौन मानता है इन ढकोसलों को ? देखतीं नहीं, कैसी कैसी औरतें रात दिन आँखो के सामने से गुजरती रहती हैं। अभी अभी जिन्होंने वन्देमातरम् गाया था, बी० ए० पास हैं वह। सुना है कि बहुत काम करने वाली हैं, नगर कांग्रेस कमेटी की सदर रह चुकी हैं ...। और वही क्या, सभी औरतें आजकल नए फैशन की ऐसी ही होती हैं ..।" सावलदास ने सिगरट का दम भरते हुए कहा।

रम्पो के तन बदन में आग सी लग गई— "तो फिर किसी ऐसी को ही पकड़ लाते, और अभी कौन मना करता है ? रात दिन सिर फकेरे सड़कों पर घूमती रहती हैं ....। अपना भाग सराहेंगी, बडे आदमी ठहरे तुम ....। एक तो मर गई कुढ कुढ कर, मै भी तुम्हारी आँखों मे खटकती रहती हूँ ...।"

साहब की परेशानी का कोई वारापार न था— "अगली सीट पर बैठा ड्राइवर और चपरासी क्या कहता होगा ?" अजीब उलझन थी, किस प्रकार मनाएँ गृहिणी को ? बोले— "बस हो गई नाराज ? चलो उतरो तो, फिर जैसा मुनासिब होगा किया जायगा। लाओ लल्ला को मैं थाम लूँ ?"

"सरकिट हाउस" के सुन्दर सुसज्जित कमरे में पहुँच कर रम्पो ने एक ओर 'सैंडिल' उतार कर फेंक दी और एक ओर बच्चे के पोतड़े फेंक दिये। फिर बालक को पलंग पर डाल कर वह स्वयं भी बिस्तर पर पड़ कर सिसकने लगी। साँवलदास के हाथ पैर फूल गए "करें तो क्या करें, कैसे बेवक्त इसने जात देने की ठानी है ?" हाथ से जलती हुई सिगरेट फर्श पर छूट पड़ी, दरी में से धुँआ उठने लगा, कपड़गंध मस्तिष्क की शान्ति को चाटे जा रही थी। वह जल्दी जल्दी सिलगती हुई चिनगारियों को बुझाने लगे। बाहर लोगों की अपार भीड़ साहब को अपना अपना दुखड़ा सुनाने के लिये व्यग्र हो उठी थी। बच्चा अलग ही गला फाड़ फाड़ कर चीख रहा था। रामप्यारी ने बच्चे को घसीट कर छाती से लगाते हुए कहा— "आग लगे ऐसी नौकरी और फैशन में ? जरा सा पढ़ लिख क्या गए, देई देवताओं को भी मानना छोड़ दिया। मेरे फूल से बच्चे पर मीरा का कोप बढ़ता जा रहा है, और इन्हें कुछ सूझता ही नहीं ... ।"

नया पेशा

[१]

सड़क के उस पार जो दूर तक फैला हुआ कब्रिस्तान है, उसी के इधरवाले किनारे पर उसकी झोपड़ी पड़ी है। आसपास की आलीशान कोठियों के बीच वह छाती के फोडे के समान— साक्षात् व्यथा की प्रतिमूर्ति सी कराहती रहती है। उसे झोंपड़ी के अतिरिक्त कहा भी क्या जाए, यद्यपि न वह झोंपड़ी है, और न मकान ही। तीन तरफ की दीवारें कुछ कच्ची और कुछ पक्की ईंटों और ईंटों के टुकडों से खड़ी करके, उन पर एक टूटी सी सिरकी डाल दी गई है, और सिरकी के ऊपर फटे पुराने टाट तथा टूटी चटाई के टुकड़े बेतरतीब फैला दिये गए हैं, न किवाड़ न चौखट, ऊँचाई मुश्किल से गज भर की ही होगी। जब वर्षा या आँधी का जोर होता है,

तब उसमें रहने वाले छोटे बडे सब प्राणी, बारी बारी से, गिरी हुई ईंटों को उठा २ कर जहाँ की तहाँ रखते रहते हैं। न लिपाई न पुताई, ईंटों को रोक रखने के लिए भी कोई किसी प्रकार का जमाव नहीं। देखनेवाला को आश्चर्य इस बात का है कि इसमें मनुष्य कहे जाने वाले प्राणी कैसे रहते होंगे जब कि जानवरों के रहने योग्य भी यह जगह नहीं दीखती। वर्षा और शीत की अनेक रातें परस्पर गिर जाडे बैठे बैठे ही काट देते हैं यह सब। धूप रुक सकती है न पानी, पर आखिर उसमें भी लोग रहते ही हैं— एक नहीं, कई एक। उसका जो स्वामी है, उसके अलावा गृहस्वामिनी तथा चार या पाँच छोटे बडे मिला कर बच्चे भी हैं। जगह होगी मुश्किल से दो खाट की। पर खाट कहाँ से आई— जो हाल ऊपर हैं, वही अन्दर दीखता है। एक ओर छः ईंटे रख कर चूल्हा बना लिया है, मिट्टी का कुंडा आटा गूँथने का काम चला देता है और पतीली के स्थान पर काली-किस्ट हाँडी और लकडी की डोई जो चमचे के स्थान पर रख छोडी है। दूसरे कोने मे मैला सा मिट्टी का घडा धरा है और उसी के पास अनेक छिद्रोंवाला, जङ्ग लगा हुआ टीन का डिब्बा पड़ा रहता है। जिसके जी मे आया डिब्बा घडे मे डुबा कर मुँह से लगा लिया। आटा माँडने से और पानी पीने तक ही नहीं, बल्कि आबदस्त का काम तक यह डिब्बा चला देता है। यही हाल कपडों का भी है। फटे पुराने कम्बल और बोरी के टुकडे

और गूदड़ा हुई रजाई का एक-आध टुकड़ा बिछाने ओढने के काम आ जाता है, और सत्तर पेबन्द लगी हुई ओढनी तथा पजामा तन पर चिपका रहता है घरवाली के। बच्चों का क्या पूछना, वह तो करीब २ बारह मास नंगे ही घूमते रहते हैं। गृहस्वामी लंगर कसे रहता है, या कभी २ तहमद लपेट लेता है।

जैसी उन लोगों की दिनचर्या है, वैसा ही रहन सहन भी। प्रातः से सन्ध्या तक गृहस्वामी क़ब्र खोदने की चिन्ता मे व्यस्त रहता है, और घरवाली या तो चिथडे गूदडो मे से जूएँ और खटमल बीन बीन कर मारती रहती है, या फिर खाना पकाने के बाद सिर और बदन के कपड़ो में से जूएँ झाडती रहती है। यदि कोई 'चने जोर गरम' वाला या बर्फवाला अथवा चाट पकौड़ीवाला आया तो उससे एक दो पैसे की चीज लेकर खा डाली और पत्ता छिपा कर दूर फेंक दिया। बाल-बच्चे दिन भर गिल्ली डंडा खेलते रहे, या पतंग उडाते फिरे। कभी मन हुआ तो चूल्हे मे जलाने के लिये क़ब्रिस्तान में से थोडी लकड़ियाँ और घास-फूस बीन लाए, अन्यथा वह भी नहीं।

रात को जब सब इकट्ठे होते हैं, तो दिन भर का मौन-भंग करने के लिए घोर अन्धकार की छाती को फाडनेवाला चीत्कार करते रहते हैं। कभी पति पत्नी में झगडा, तो कभी बच्चो मे लड़ाई,

और कभी कभी मारपीट तक की नौबत आ जाती है, और तब किसी की हिम्मत उनमें बीच-बचाव करने की नहीं होती, क्योंकि कब्रखुदा आपे से बाहर होकर चाकू छुरे से घायल कर देने की धमकी देने लगता है। और उसकी इसी हरकत से पुलिस भी सचेत होकर रहती है, कई बार उसे हवालात में भी रहना पड़ा है।

वैसे उस पर सभी की कृपा रहती है। प्रायः घरों के रसोइये और नौकर-चाकर चौके की बची-खुची चीजें उसकी झोपड़ी मे डाल आते हैं। दाल, साग, दो चार रोटी या चावल अक्सर वहां पहुंचते रहते हैं, यहाँ तक कि बडे आदमियों के बच्चे अपने नौकरों की देखा-देखी दो चार पैसे भी उसे दे आते हैं, जिन्हें कब्रखुदा घरवाली और बच्चों से छिपा कर अंटी में खोंस कर चुपके से रख लेता है। अफीम खाने और शराब पीने की भी लत है उसमे। इस तमाम मुहल्ले मे हिन्दू लोग ही रहते हैं, किन्तु आसपास के और मुहल्लों से रोजाना दस पॉच मुर्दे गढ़ने के लिए इस कब्रिस्तान मे आते हैं। पहिले सुना था कि फी कब्र एक रुपया मिलता था इसे, लेकिन अब महॅगाई के कारण दो से एक दम तीन कर दिए गए हैं और कभी कभी पॉच से सात तक भी मिल जाते हैं। पहिले तमाम कब्रें यह खुद ही खोद लेता था पर अब बूढ़ा हो चला है कुछ इसलिए और कुछ दमे की बीमारी के कारण काम ज्यादा होने पर एक दो मजदूर भी लगा लेता है— फिर भी कम से कम पॉच छै रुपये रोज़ाना की आमदनी है इसे। और रहता है फकीरों की तरह।

कुछ इसकी गंदगी और कुछ कब्रिस्तान की भयानक हवा से कभी २ पड़ौसियों का मन बड़ा ऊब जाता है। इतनी लम्बी चौड़ी जगह में सैंकड़ों कोठियाँ और बाग होते। मगर अब रात दिन मृत्यु का ताण्डव रहता है इस मैदान में, तिस पर साक्षात् मृत्यु-सदृश यह कब्रखुदा रहता है हर समय। कोई क्षण ऐसा नहीं होता जब कि इसका मन किसी दूसरे काम में लगता हो। सड़क के किनारे बैठा मुर्दों की इतजार करता रहता है। हम सब इसे देखते हैं और सोचने लगते हैं— "यह भी क्या कोई रोजगार है, यह भी क्या कोई काम है ?"

इतना सब करने पर भी तन पेट का उचित प्रबंध नहीं, इसकी जाति के लोग और बडे बडे नेता कानों पर हाथ धरे आराम से दिन गुजार रहे हैं और यह अभिशाप के समान यहाँ पड़ा हुआ दिन दिन पतन की ओर सरक रहा है। मरने जीने का कौन ठिकाना, किसी किसी दिन एक भी मुर्दा नहीं आता और तब उसका दंड भोगना पड़ता है हम सबको "आटा चाहिये, दाल दे दो जो जरा सी, और अब नमक के बिना हंडिया अलूनी पड़ी है" आदि २। लेकिन किया क्या जाए, पड़ौसियों को भी तो पाप का भागी बनना पड़ता ही है। किसी ने सच कहा है— "मनहूस बना दे भगवान, पर मनहूस का पड़ौसी न बनावे।"

[२]

उस दिन उसके छोटे लड़के ने आकर कहा— "अब्बा आए हैं जी।"

मैने कहा— "क्या लाए हैं ?"

और तभी दरवाजे से सटकर खींसे निकाल कर वह बोला— "दो दिन फाके से कटे हैं बीबी जी। एक भी मुर्दा नहीं आया, क्या जाने कमबख्तों से मौत भी डरने लगी क्या ? वह डायन अलग मुझे खाए जा रही है, यहा तक कि चार मुर्गियाँ पाल रखी थीं, उनमे से भी दो भूखों मर गईं। उन्हें चारा तक नसीब न हो सका।"

मैंने कहा— "तो फिर मुर्दों के भरोसे पर जिन्दा रहना चाहते हो ? और कोई काम करो, जो पेट भरे। यह छः छः बच्चे और औरत पल्ले से बँधे पडे हैं, जान नहीं खायेंगे तो क्या करेंगे ?"

बोला— "क्या काम करूँ सरकार! खाटें बुनना जानता हूँ, मामूली सी बुन लेता हूँ, सो भी किसी के घर जाकर तो बुन नही सकता। न जाने कब कोई आ निकले, और कब्र खोदने की जरूरत पड़ जाए। हाँ, कोई तकिए मे ही डाल जाए तो ठाली वखत में बुन सकता हूँ।"

मैंने कहा— "अच्छा देखो, यह दो पलग और बान पडे हैं, उठा कर ले जाओ। ठाली वखत में बुन लेना ..., बुनाई क्या लोगे ?"

बोला— "तीन रुपये दोनों के।"

"तीन रुपये ? अरे अभी पिछले महीने दो रुपये में बुनी जा रही थी— तुमने तीन कर दिए ?"

हमारी महरी ने कहा— "रात दिन तो यहाँ कुछ न कुछ माँगने को खडे रहते हो, और फिर भी .... .. ?"

उसने अपने बदन की धूल झाड़ते हुए कहा— "बस रहने दे, चार आने में भी एक हँडिया नहीं पकती आज, जो पहिले चार पैसे में उतर आती थी ......। ला जरा सा तम्बाकू दे खाने का, मै चलता हूँ, क्या पता कोई आ ही निकले— जगह अकेली देख कर लौट जाए।"

मैंने महरी को डाँट कर कहा— "क्यो झख झख कर रही है ? जा वह दोनों पलँग और बान उठवा दे इसे।" फिर उससे कहा— "जल्दी बुन कर दे जाना।"

बोला— "परसों तक दे दूँगा, पर एक रुपया मिल जाता तो बच्चों के मुँह में दाना पड़ जाता, दो बाद में दे देना।"

मैंने एक रुपया उसके सामने डाल कर कहा— "अच्छा अब जाओ......।" वह चला गया और मै सोचने लगी— "कितना घिनौना सा है यह आदमी, और कितनी कठोरता है इसके चेहरे पर। यह भी मनुष्य है और वह सब मरनेवाले भी मनुष्य ही तो थे कभी।"

[२]

प्रातःकाल बहुत देर तक कब्रिस्तान की ओर से रोने-पीटने की

आवाज आती रही और फिर सहसा सब कुछ शांत हो गया। हम लोगों ने समझा कि शायद किसी का प्रिय जन मर गया होगा, अभागी नारी क़ब्र पर फूल चढाने आई होगी, या धूप जलाने, जैसा कि प्रायः देखा जाता रहा है, किन्तु थोड़ा दिन चढने पर देखा कि कब्रखुदे की स्त्री बुरका लपेटे दरवाज़े पर खड़ी रो रही है, साथ ही चारों-पाँचो बच्चे भी आँसू बहा रहे हैं और उनके पीछे पीछे दोनों मुर्गियाँ कुकड़ू कू · कुकड़ू कू ·· करती घूम रही हैं। वह कहती जाती है— "हाय मियाँ, हाय मियाँ" और बच्चे "अब्बा, अब्बा" कह कर सिसक रहे हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि कब्रखुदा रात सहसा मर गया, उसकी कफ़न-काठी के लिए एक पैसा भी इसके पास नहीं है। आस-पास के लोग भी इकट्ठे हो गए, और धीरे धीरे पन्द्रह बीस रुपये चन्दा इकट्ठा करके वह चली गई। हम लोग छत पर चढ कर देखने लगे, सामने ही तो थी उसकी झोंपड़ी। वह शायद अन्दर ही पड़ा था। घरवाली और बच्चे आते-जाते राहगीरों से भी पैसे माँगने लगे। इसी उलझन में दोपहर हो गया। मुहल्ले में मुर्दा पड़ा था, चूल्हों में आग कैसे जलती? न खाना न पीना। मन ऊबने लगा और हार कर थोड़ा बहुत मुँह मे डालने की चिन्ता से मैंने ग्वाले के लड़के से कहा— "दिन भर यह उसकी लाश में कीड़े डाल कर भीख ही माँगती फिरेगी क्या सड़को पर? इससे कह कि चार जनों को जोड़कर इसकी मिट्टी लगवावे।"

लड़का कौतूहल से कभी मेरी ओर और कभी सड़क पर घूमते हुए उस परिवार की ओर देखने लगा।

मैंने फिर उससे कहा— "कहता क्यों नहीं रे, इस औरत से? कब्रखुदा मर गया है रात, और अब दोपहर हो गया उसे सड़ते सड़ते........।"

अब की जैसे लड़का सचेत हो गया, बोला— "अभी कहता हूँ जी, पर रात को तो अपनी कचम··· विसके पास बैठ कर हुक्का पी गया था मैं, ईमान से। क्या हो गया था विसे·····।" कहता हुआ वह कब्रखुदे की घरवाली के पास जाकर बोला— "तमाम दिन डाले रक्खेगी क्या इसे? जाकर बुला ला सामने मसजिद में से किसी को। वह क्या है, कचहरी के पास मसजिद। मैं तब तक यहा खड़ा हूँ···।" कहता हुआ वह कब्रखुदे की झोपड़ी की ओर बढ गया, और तुरत ही एक चीख मार कर दूर सड़क पर जा पड़ा।

आसपास के आदमी इकट्ठे हो गए— "क्या हो गया लड़के को, लाश देख कर डर गया·····? पराया लड़का है, पेट में डर बैठ गया तो क्या होगा? आया था विचारा ढोरी के साथ।" दूकान वाले अपनी अपनी दूकानों से कूद कूद कर उसकी तीमारदारी में लग गए। कोई मुँह पर पानी छिड़कने लगा, तो कोई दूध का कुल्हड़ लेकर उसे दूध पिलाने चला। लड़के का बुरा हाल था।

मैं भी ऊपर खड़ी खड़ी पछता रही थी— "क्यों मैंने इससे कहा ? जाने क्या हो गया इसे, मुर्दा देख कर डर गया एक दम।" जी नहीं ना, और मैं नीचे उतर कर यू डी-क्लोन की शीशी लेकर वहा पहुँची।

अनेक यत्न करने के बाद लड़के को कुछ होश हुआ। धीरे धीरे ला— "अल्ला की कसम, ईमान से, यह तो भूत बन गया है। सब गो ·· भाग जाओ, नहीं तो पकड़ लेगा। मैंने खुद अपनी आँखों से ाँक कर देखा है, वह आँखें खोले पड़ा था और खाँसा भी ····· ।"

लड़के की बात पर किसी को कैसे विश्वास होता ? सब एक दूसरे मुँह की ओर देखने लगे— "यह पागल हो गया है क्या ?" । एक ने साहस करके कब्रखुदे की झोपडी में झाँक कर कहा— "अरे ´, यह देखो, यह तो जिन्दा हो गया भइया। उठने वाला है अब, ागड़ाई ले रहा है···· · ··· ।"

अब क्या था, तमाम मुहल्ले मे चक्की सी चल गई— "कब्रखुदा ‘र कर जिन्दा हो गया ·· भगवान की माया है।" दो चार जने, ो अनुभव मे सबसे बढा चढा मान बैठे थे अपने को, बोले— "रहने ी दो बस · बहुत देखा है जमाना हमने भी भइया। किसी को मर ‍र जिन्दा होते नहीं देखा, घर के घर उजड़ गए ··· ।"

बूढे पनवाड़ी ने बीड़ी का धुँआ उड़ाते हुए कहा— "और क्या ? ात को ज्यादा पी गया होगा ·· वह समझी कि बस··· ·· ।"

इतने ही में कब्रखुदे को दमे की खाँसी उठ आई। खाँसता खाँसता दम तोडता हुआ झोंपड़ी के बाहर घिसट आया और लगा घरवाली को बुलाने की कोशिश करने— "अरी कम्बख्त हमीदा की मा''''''ऑ'' ऑ'''', कहा मर गई जाकर ?"

दूधवाले ने भट्टी में कोयले झोकते हुए कहा— "आज तो खूब छनेगी मिया। सुबह से पचासों रुपया इकट्ठा कर चुकी है तेरी कफ़न-काठी के लिए, वह जा रही है अब कचहरी की तरफ़, मय बाल बच्चों के ''। यह नया पेशा खूब निकाला दोस्त !" कब्रखुदे ने अपना मोटा सा सोटा खींच लिया, शायद घर वाली को बुलाने, उधर ही जाने के लिए।

त्यागी जी

[१]

महाशय त्यागी जी जब तीसरी बार जेल से लौटे तो वह स्वयं भी अपने से कोई कम प्रभावित नहीं दीखते थे। फिर दूसरे लोगों की तो बात ही अलग थी, जैसे चारों धाम की यात्रा पूरी करके लौटे हैं वह, इस बार ऐसी श्रद्धा थी लोगों मे। इसका प्रभाव उनके परिवार पर न पड़ा हो, ऐसी भी कोई बात नहीं थी। घर का बच्चा-बच्चा अपने आप को बहुत बडे आदमियों की श्रेणी मे गिन बैठा था, जिनमे मान, बड़ाई और विद्वत्ता— सभी कुछ विद्यमान रहता है और जो अन्य लोगों से सीधे मुँह बात करना भी पसन्द नहीं करते।

इन खूबियों के अलावा आकाश से टूटे तारे के समान भगवान् की ओर से उन्हें वर-स्वरूप एम० एल० ए० की पदवी भी प्राप्त हो गयी, जो उनके कुल और जाति के लिये अभूतपूर्व बात थी। इसी उपलक्ष में उस दिन उनके यहाँ कथा थी। न जाने कब कब के कूडे-कचरे का ढेर गली के मोड़ पर लगा दिया गया था— घर की सफाई जो हुई थी। अपने को साहित्यिक समझने के नाते, आये दिन उनके व्याख्यानों में एक विशेषता यह भी रहती थी, कि कोरे कांग्रेस के कार्य-क्रम की ही चर्चा नही, बल्कि कांग्रेस और सत्याग्रह के महत्व से शुरू होकर, अनुशासन, नागरिकता तथा शिष्टाचार जैसे गम्भीर विषय भी उनके भाषण मे सोने मे सुगन्ध की भाँति रहते थे, जिन्हें जनता गद्गद् कण्ठ से सुनती और फिर मुक्त-कण्ठ से उनकी प्रशंसा करने से भी नहीं चूकती थी।

इस बार वह जेल से दो एक पुस्तकें भी लिख लाये थे, जिन्हें वह अपने इष्ट मित्रों को सुनाने के लिये सदा तत्पर रहते थे। आये दिन गृहिणी से इसी लिये झगड़ा ठना रहता था कि वह उनकी राय मे उनके गम्भीर सूत्रों को समझ नही पाती, केवल आँखें फाड़े और मुँह फैलाये कुछ समझने की चेष्टा जरूर करती, और त्यागी जी माथा ठोंक कर रह जाते, क्योंकि वह तो बी० ए० पास थे।

इस गृह-कलह का एक कारण और भी था। पुस्तक में लिखे सूत्रों का प्रयोग घर मे नही चल सकता था— "यहाँ बादाम का छिलका

किसने डाल दिया, पैर में चुभ गया तो खून की नदियाँ वह चलेंगी, और देखो जूठे बर्तनों पर जो मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, इनसे बीमारी फैलती है, कपडे साबुन लगा कर थोड़ी देर रख देने चाहिये; चीनी को हमेशा ढाँक कर रखो... ।" आदि आदि क्रियाओं को वह कई बार बता चुके थे, स्वयं भी इन बातों पर अमल करने की चेष्टा करते थे, और इसी लिये जेल मे जो बक्स साथ था, उसमे का साबुन, चीनी, चाय आदि ज्यों का त्यों ठीक तरह से रखा था। जरूरत पड़ने पर वह स्वय आवश्यकतानुसार निकाल देते थे।

बच्चे भी छोटे बडे मिला कर आठ थे कुल, जिनकी शिक्षा और सभ्यता का ध्यान उन्हें हर समय रहता ही था। उनके खयाल मे उन जैसे बच्चे तो आस पास थे नहीं, किसी के विलायत में भले ही उतने सुसस्कृत बच्चे होते हो। उनका विचार था कि बीचवाला लड़का तो अवश्य ही मनोविज्ञान का प्रकाण्ड पण्डित बनेगा, बाक़ी कोई इजिनियर, कोई कवि और कोई चित्रकार तथा लेखक भी बन सकता है। यही कल्पना लड़किया के बारे में भी थी। उन्हें किसी के घर का रहन-सहन, खान-पान कुछ भी पसन्द नहीं आता था। चार मित्रों मे बैठ कर वह गृहिणी के एक एक कार्य की प्रशसा करते और चाय आदि बनाने के तरीके भी बतलाने की कोशिश करते थे। यह तो सभी जानते हैं कि अपनी बुद्धि और दूसरे के धन का कोई वारापार नहीं होता।

[२]

साग की पतीली चूल्हे से उतार कर गृहिणी ने नीचे अङ्गारों पर टिका दी और कढ़ाई चढ़ा कर वह हल्की भारी सभी तरह की लोइयाँ जल्दी जल्दी बनाने लगी। सामने बैठा भीमा पिट्ठी पीस रहा था, केवल एक लंगोटी पहने, आयु होगी कोई बारह वर्ष की, रंग काला और सिर के बाल बढ़े हुए, जैसे किसी साधू का चेला हो। आज वह भी बहुत खुश था, रोजाना एजेन्सी के चावलों की खिचड़ी खाते खाते उसका भी मन ऊब उठा था— महीने में एक दो बार कभी एक-आध रोटी सामने आ जाती थी। क्या करें आधा पाव रोज मिलता है, इसमें कोई क्या खाये और क्या खिलाए? इधर उधर से जो नाज आता था, उसमें तो घर के लोगों का भी पूरा नहीं पड़ता, फिर बेहद महँगा भी पड़ता था। भीमा को कोई कहाँ से खिलाए? लेकिन आज उसने कुछ जी तोड़ कर काम किया है— घर में पूजा है, कई एक ब्राह्मण न्यौते गए हैं— तो क्या भीमा को आज भी खिचड़ी मिलेगी? सवेरे चार बजे से उठ कर घर की सफाई पुताई के अलावा सबके कपड़े धोये हैं, साबुन लगा लगा कर। बर्तन सब तिन से साफ़ किये हैं। न जाने कितना पानी नीचे से ढो ढो कर लाया है सर। साग सब्जी सब इसी ने काटी है। यही सब हिसाब लगाते लगाते उसने सोचा— यदि जो भी हो आज पूरी कचौरी से ज्यादा पर [illegible] [illegible], [illegible] क्योंकि [illegible]

जो साथ होंगे और हलुआ— वह तो उसने बरसों से नहीं खाया ˙ । उसकी विचारधारा का अन्त नहीं था। तभी बहू जी ने उसके सिर पर चपत रखते हुए कहा— "ऊघ रहा है या दाल पीस रहा है ? फिर बाबूजी कहीं काम मे फंस गये तो बस तू समझता है कि सब तेरी तरह ठाली हैं।" और तुरन्त भीमा के हाथ मशीन बन गए। भरसक शक्ति से वह दाल पीसने लगा। "भीमा! अरे भीमा मर गया क्या कहीं जाकर ˙ ?" बाहर से त्यागी जी ने उसे पुकारा। वह चौकन्ना सा होकर पल भर में उनके सामने आ खड़ा हुआ। त्यागी जी ने पहले तो सिर से पैर तक उसे घूर कर देखा, फिर कहा— "तुम लोगों के ऊपर जी चाहे जितना लिखो और बोलो, पर रहोगे बिल्कुल गँवार ही, देख तो ˙।" कह कर उन्होंने हुक्के पर से चिलम उतार कर वहीं बरामदे मे उलट दी और उसे दिखाते हुए कहा— "बता दिखाऊँ उठ कर या दीखा तुझे ? इसमे 'चुगल' डाला तूने ˙˙ ? बीस बार तुझे समझाया होगा कि 'चुगल' डाल कर तम्बाखू की टिकिया जमाया कर, पर तेरी बुद्धि मे खाक नहीं आया । और इधर हम हैं जो किसान मजदूरों की तरफ़दारी करते करते मरे जा रहे हैं।" भीमा ने सिर खुजलाते खुजलाते धीरे से कहा— "डाला तो था जी 'चुगल', पर कोयले का डाला था, जल गया होगा।" त्यागी जी का क्रोध सीमा को पार कर चुका था, वह न जाने कब से अकेले बैठे देश की दशा पर ग़ौर कर रहे थे। कपड़े की समस्या, खाने की समस्या, बेकारी की समस्या, और न जाने कितनी

समस्याएँ उनके सामने थी। उन्होने निश्चय कर लिया था कि वह जान लड़ा देंगे, कोई भूखा नंगा नहीं मर सकता। और इधर बीच ही मे इस कम्बख्त ने विघ्न डाल दिया। घण्टों कश खींचते खींचते हो गये, पर तम्बाखू हो तो धुआँ निकले, वह तो न जाने कब का जल कर खाक हो चुका। फिर भीमा के सिर पर चिलम ठठते हुए उन्होंने कहा— "जा, जल्दी भर कर ला, और देख बहू जी को भेज जरा...। और 'बुगल' मिट्टी या ईंट की ककड़ का डालियो, कोयले का नहीं।" भीमा हिलता कॉपता चिलम लेकर चला गया और गृहिणी ने तुरत आकर पूछा— "क्या है?"

त्यागी जी ने उन्हे और भी पास बुला कर कहा— "तुम यह सब क्या पूजा-बूजा का बखेडा लिये बैठी हो, और मुझे मरने तक की फुरसत नहीं है। कल प० जवाहरलाल नेहरू आने वाले हैं— सुबह झण्डे की प्रार्थना है और...और फिर चाय पार्टी ... और हॉ .. फिर जिले का दौरा ।"

मनसा देवी ने ऊब कर कहा- "तो कहो न क्या कहते थे करने को?"

"यही कहता था कि तुमने यह सब बखेड़ा बाँधा है, और मुझे कल बिलकुल फुर्सत नहीं होगी ...।"

"लेकिन कथा तो आज है, न कि कल? दो घण्टे में सारा काम खतम हुआ जाता है। ब्राह्मणों को न होगा पत्तल दे देंगे .. जो बात मुँह से निकाल बैठे उसे तो पूरा करना चाहिये...।"

त्यागी जी ने इधर से उधर टहलना शुरू कर दिया था। सहसा रुक गये— जैसे कि इन्जन में ब्रेक लग गया हो।

जीवन में आज पहली बार ही उन्होंने अपनी स्त्री को इतनी बुद्धिमती समझ कर मन ही मन उसे प्रणाम किया। उन्हें यह याद ही न रहा था कि कथा आज है या कल। गृहिणी की ओर मुग्ध भाव से देखते हुए बोले— "तुमने सुना होगा कि कांग्रेसी मिनिस्ट्री बननेवाली है, और कल वहाँ आ रहे हैं पण्डित नेहरू, समझीं?"

मनसा ने अन्यमनस्क भाव से कहा— "हाँ, बड़ी दुर्दशा है देश की। अच्छा ही हो किन्हीं भले हाथों में राज सौंपा जाये तो- अपना मारेगा तो भी छाँह में ही डालेगा । अच्छा घी जल रहा है कढाई में।" कहती हुई वह घर में चली गयी। त्यागी जी बहुत देर तक उधर ही देखते रहे जिधर से गृहिणी गई थी। त्यागी जी मन ही मन सोचते जाते थे— "देखो नेहरू जी का क्या रुख रहता है, और उनसे भेंट होने का भी अवसर मिलता है या नहीं?"

थोडी देर बाद बड़ी लड़की ने आकर कहा— 'बाबूजी, आपसे बहुत से लोग मिलने आए हैं।"

"कौन हैं वह ?" त्यागी जी ने उत्तेजित स्वर से पूछा।

"कोई अपने को कपडेवाले कहते हैं, कोई बूरावाले और कुछ अनाजवाले भी हैं ।" लडकी ने एक पैर से खडे होकर घूमने का अभ्यास करते हुए कहा।

"जाओ, कह दो, हैं नहीं घर में...। कल पण्डित जी आने वाले हैं, इसी इन्तजाम में बाहर गये हुए हैं।"

"पर मैंने तो कह दिया है...।"

"तुम्हें तो जरा भी अक्ल नहीं, पहले मुझसे मालूम कर लेना था...। जाओ...।"

लड़की ओठों पर जीभ फिराती हुई भाग गयी, और बाहर खड़े लोग आपस में कहने लगे— "चलो भई। त्यागी जी बड़े आदमी हो गये हैं अब, किसी से बात करना पसन्द नहीं करते।

ठीक आठ बजे झण्डे की प्रार्थना होने वाली थी। त्यागी जी प्रातःकाल चार बजे से ही उठ बैठे, गृहिणी को भी जगा दिया गया, बच्चे भी तैयार होने लगे और भीमा को भी अनेक आदेश देकर वे प्रार्थना में जाने की बात सोचने लगे— 'आठ बजे प्रार्थना होगी— वहाँ से लौटते लौटते दस बज जाना मामूली बात है, फिर सम्भव है कि उन्हें कुछ बोलना भी पड़ जाये। मजदूरों के ऊपर बोलना ठीक होगा क्योंकि जगह जगह मजदूरों के झगड़ों की सुनाई आती रहती है। रोजाना अखबारों में हड़ताल के समाचार छपते रहते हैं। पर इन बिचारों की बड़ी दुर्दशा है। उनके दिल में इनके प्रति बड़ा दर्द है। लोग उन्हें इसी लिये कम्यूनिस्ट भी कह डालते हैं, और हैं वह पक्के कांग्रेसी। कांग्रेस क्या किसान मज़दूरों की हामी नहीं है? लोगों का क्या है— जो

मुँह में आया बक डाला। जरा 'हरिजन सेवक' तो पढ कर देखें तब पता लगे कि असलियत क्या है। पर कितने लोग पढते होंगे उसे? यह लोगों की बडी गलती है ..।" यही सब सोचते सोचते उनकी निगाह घड़ी पर जा टिकी। कलाई को कान से लगा कर देखा। ठीक सात बजे थे। जल्दी जल्दी सबको आगे निकाला दरवाजे से। गृहिणी ने आइने के सामने खडे होकर फिर देखा— हरे रग की छपाई की खादी की साड़ी परसों ही आश्रम से मँगाई थी, आज पहिली बार पहनी है। त्यागी जी जल्दी कर रहे थे— "चलो देर हो जायगी, मुझे वहाँ का सब प्रबन्ध देखना है ...।"

गृहिणी ने कहा— "वहाँ तो बहुतेरे देखने करने वाले हैं, प्रार्थना तो हर महीने होती है— सब ठीक ही रहता है। जरा अलमारी का ताला और लगा दूँ।" कह कर वह फिर घर मे चली गयी। बच्चे जलूस की शकल मे त्यागी जी के पीछे खडे थे। कई एक नंगे पैर और जूते हाथों में। अजीब ढंग दीख रहा था। त्यागी जी ने एक बार घूम कर देखा, बोले— "यह क्या बेहूदगी है— जूते पहनो।" तो किसी ने पैर के अँगूठे का छाला दिखलाया, किसी ने उँगली का। "जूता काटता है।" कह कर बच्चे एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

बडी लड़की ने रूमाल से चप्पलों को झाड़ते हुए कहा— "बस चप्पल ठीक रहती हैं।"

त्यागी जी की बेचैनी बढ़ती जाती थी। इस बार कुछ ऊँचे स्वर में कहा— "चलती हो या हम जायें... ?"

"आई ज़रा भीमा को खाना दे आऊँ।" उधर से आवाज आई और फिर बाहर आकर गृहिणी ने चलते चलते उन्हें बतलाया कि "वहाँ से लौटने मे देर हो सकती है। उनके लिये तो उन्होंने ताजी पूरियाँ उतार कर रख दी हैं। कुछ कल का खाना रखा ही है, जाड़ों मे खराब थोडे ही होता है ? भीमा के लिये उसकी रात की बची खिचडी रखी थी, वह उसे दे आई हूँ··· काम धंधे से निबट कर खा लेगा बेचारा। कब तक भूखा पड़ा रहता···?"

त्यागी जी ने अपने कुरते की आस्तीन ठीक करते हुए कहा— "हाँ, यह तुमने ठीक किया, देर हो सकती है, वहाँ से आकर-खाना बनाने में बडी उलझन रहती। मुझे फिर बहुत काम करना है, शायद पण्डित जी के साथ गाँवों में दौरे पर जाना पडे, देखो भगवान के हाथ है, न जाने कब लौटना हो···?"

पत्नी ने शंकित भाव से पति की ओर देखते हुए कहा— "मन न हो तो न जाना, शाम तक तो लौट ही आओगे, भगवान सब भला करेंगे।" और त्यागी जी ने हाथ की छड़ी को ज़ोर से सड़क पर पटकते हुए मन ही मन कहा— "ओः कितनी नासमझ है यह ?"

कहानी का विषय

[१]

भूषण भैया जब अपने इतने बड़े पद को त्याग कर सहसा जेलखाने में जा पड़े तब हम सब समाचार-पत्रों में इस समाचार को पढ़ कर स्तब्ध से रह गए। साहित्य-क्षेत्र से एक दम राजनीति में कूद पड़े—यह जीवन से पलायन नहीं तो और क्या है?

जब से होश सँभाला, इस इतने बड़े संसार में अपने को अकेला ही पाया उन्होंने। विद्यार्थी जीवन समाप्त भी न कर पाये थे कि अपना कहनेवाला कोई भी शेष नहीं बचा। जिन्हें अपना समझने की कोशिश की, वह किनारा काटते रहे, और जिनसे बचना चाहा, वह हमेशा परेशान करते रहे। यहाँ तक कि विवाह भी प्रतिकूल ही रहा, और व्यथा का एक अंश बन कर केवल एक दुःखद स्मृति ही रह गया। इसके पश्चात् न जाने कितनी रूपवती और गुणवती कन्याओं ने आत्म-समर्पण करना चाहा उन्हें, पर भूषण बाबू ने दूसरे विवाह की कल्पना को भी जैसे मन में कभी स्थान देना अनुचित और दुःखद ही समझा।

जीवन की अनेक त्रुटियो को और असख्य अभावों को वह उपन्यास, कहानियाँ, लेख और कवितायें लिख लिख कर पूरा करने की चेष्टा मे लग गए। अपने को निरन्तर व्यस्त रखना— हर समय लिखते-पढ़ते रहना ही मानो उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया था। उन्हे जैसे क्षण भर का भी अवकाश नही था। जो शेष समय मिलता वह खाने पीने और सोने मे निकल जाता। ससार उनसे विमुख था, और वह संसार से; और जब इससे भी असतोष रहा, तभी शायद उन्होंने जेल के सीखचो में बन्द पडे रहना स्वीकार किया था।

उस दिन पूरे नौ मास बाद, वह सहसा मेरे सामने आकर बैठ गए। श्वेत खद्दरधारी, जैसे सदा से यह इसी प्रकार बैठे आ रहे हों। मैने पूछा— "कब छूटे ? मुझे तो कोई खबर भी न दी, न जाने के पहिले और न छूटने के बाद ?"

कहने लगे— "खबर देने मे प्रतिवाद का भय था, इसीलिए जाते समय पत्र लिखना उचित नहीं समझा, और छूटने के बाद सशरीर उपस्थित हूँ ......।"

उनके इस स्पष्ट उत्तर ने मुझे अवाक् कर दिया। बहुत यत्न करने पर भी मैं उनके आन्तरिक भाव को समझ न सकी। हाँ, इतना आभास अवश्य पा सकी कि उस हृदय में, उन आँखों में और उनकी बुझी हुई मुसकान मे बड़ी व्यथा दबी पड़ी है, जिसका निवारण इस जीवन में

तो होने का नहीं। मुझे चुप देख कर ही सम्भवतः उन्होंने कहा— "चाय पीना चाहता था। जेल में दो बातों की बुरी आदत पड़ गई है— चाय पीना और सिगरेट फूँकते रहना। इन दोनों से कुछ आश्वासन-सा मिल जाता है, थोड़ी देर के लिए।"

"सिगरेट भी पीनी शुरू कर दी?" मैंने कहा।

"हाँ।" उन्होंने सरल भाव से उत्तर दे दिया।

"यह तो बड़ी बुरी लत है।" मैंने फिर कहा।

"हाँ . ।" कह कर उन्होंने कलाई में बँधी घड़ी की ओर देखा, फिर कहा— "मुझे जाना है जल्दी ही आज एक जरूरी मीटिंग है, फिर किसी समय आऊँगा।"

मेरा मन खिन्न सा हो रहा था, कहा— "इतनी जल्दी थी तो फिर ही आते, मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे आये। खाना किसी के हाथ वहीं भेज दूँ, या फिर आकर खाओगे?"

बोले— "तुम तो नाराज हो मुझसे। तुम्हें क्या बताऊँ, यदि समय मिले तो मन करता है, हर समय ऐसा ही बैठा रहूँ...। खाने की चिन्ता न करो, एक नौकर है, वह खूब बना लेता है।"

मैंने प्रसंग बदलते हुए कहा— "लोग बाग बहुत तंग करते हैं। तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए। अब सब मुझे बात करते हैं कि तुम्हें

समझाऊँ मैं। यह कौन जानता है कि मेरी बातों को हँसी में उड़ा देते हो? नहीं तो घर-द्वार उजाड़ कर जेल जा पड़ते क्या?"

बोले— "घर-द्वार तो था ही कहाँ? जो था वह उजड़ा नहीं है। मकान, कोठी, बाग सब ज्यों का त्यों खड़ा है अभी तो ... !"

आगे मेरा मन उनसे बहस करने के लिए तैयार नहीं हुआ और चाय पिला कर उन्हें विदा कर दिया। मुझे ऐसा लगा मानो भूषण के जीवन का खंड-खंड बिखरा पड़ा है और उन्हे न तो कोई सहेज कर रख ही सकता है, और न उधर से आँखें ही मूँद सकता है। उनके लिए वह और अभिशाप जैसे एक ही तल पर समान रूप से रहते हैं। सप्ताह भर बाद सुना फिर जेल चले गए।

[२]

पूरे पाँच वर्ष का लम्बा समय न जाने कैसे बीत गया। इतने बीच में बहुत-सी घटनायें ऐसी भी हो गईं, जिनकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। अब की बार जो आन्दोलन शुरू हुआ उसमें कितने ही बे घरबार हुए और कितने ही लोगों को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ा। माताओं के पुत्र और सुहागिनियों के पति उनसे सदा के लिए बिछुड़ गए। भूषण भैया भी अनेक कष्टों का झेल कर अब की तीसरी बार जेल से छूट कर आए थे। सुना उन्होंने विवाह भी कर लिया है। दो-एक बच्चे भी हैं, और अब कुछ दिन यहीं रहेंगे।

हम सबकी बड़ी इच्छा थी उनसे मिलने की। बहुत दिन से कोई समाचार भी नहीं मिला था। मेरा मन बड़ा दु:खी हुआ — यह सोच कर कि इस बार वह मिलने भी नहीं आये। पर इससे क्या ? अवकाश न मिला होगा, यही सोच कर सतोष कर लिया। एक दिन हम सब लोग उनसे भेंट करने पहुँचे। बाहर लॉन पर बैठा माली घास छील रहा था, मैंने उससे पूछा — "बाबूजी हैं रे, घर मे ?"

बोला — "हाँ, हैं। कुछ लिख रहे हैं, इधर दफ्तरवाले कमरे मे बैठे हैं।"

लो बस, अच्छे समय आये। अब न जाने कितनी देर बैठना पडे ? ऊपर से घटा घिर रही है, घर भी पहुँचना है जल्दी, और तागेवाला अलग शोर मचायेगा। यह सब सोच कर मैंने और सब लोगो से कहा — "आप सब यहाँ बैठे, मैं देख आऊँ। उनके लिखने पढने मे तो बाधा नहीं डाली जा सकती। न होगा, फिर आएँगे। क्या पता क्या लिख रहे हैं— कोई कहानी, उपन्यास, लेख या कविता ? ऐसे उच्च कोटि के लेखक के बारे में कोई क्या समझ सकता है कि कब उसके मन मे कैसे भाव उदित हो उठें ?"

धीरे-धीरे पैर रखते हुए मैंने चौखट पर खडे होकर झाँका— वह बिलकुल मूर्तिवत बैठे कुछ सोच रहे थ। उँगलियो मे 'पेन' दबाये, मेज पर कोहनी टेके और हाथ पर माथा धरे।

मै वहीं ठिठक कर खड़ी की खड़ी रह गई। सोचने लगी— न जाने किस गम्भीर विषय को लिये बैठे हैं ? मालूम होता था जैसे कोई कहानी लिख रहे हों। मैं और भी पाँच-सात मिनट खड़ी रही। पर वह इतने व्यस्त थे कि हिले तक नहीं, फिर वहाँ तक पहुँचने का साहस कैसे हो सकता था ? हार कर यही निश्चय किया कि फिर देखा जायगा, अब तो घर लौटना ही चाहिये। यह तो आज बिना कहानी पूरी किए उठेंगे ही नही, और फिर निराश होकर मैं वापस चली आई। तभी आँगन में कुछ चहल-पहल सी सुन पड़ी। किसी स्त्री-कण्ठ ने नासिका तक स्वर को खींच कर शायद बच्चों से कहा— "तुम दोनों ने तो नाकों दम कर रक्खा है। और मत खाओ बस, पेट मे दर्द होगा, बाबूजी नाराज होंगे।"

मुझे सहसा ध्यान आया— "अरे, भूषण भैया का तो विवाह हो गया था न ?" श्रीमती जी से बिना भेंट किये लौट आना अक्षम्य अप-राध तो होगा ही— वैसे भी शिष्टाचार के विरुद्ध है। उनसे खाली हाथ प्रथम भेंट करने मे मुझे बड़ी ही लज्जा का अनुभव हुआ। बच्चों के हाथ मे दो दो रुपये ही थमाये जा सकते थे, पर उनसे भेंट करने के लिये तो कोई साड़ी गहना या बढ़िया-सा शृङ्गार का 'सेट' ही देना चाहिए, जिसका इस समय कोई प्रबन्ध नहीं था। यह सब सोच कर भी चुप-चाप लौट जाना ही उचित जान पड़ा। चलते-चलते एक बार पर्दे की जाली मे से मैने फिर झाँक कर भूषण भैया की ओर देखा, वह

पूर्ववत् तल्लीन थे सोचने में। अब की बार कल्पना कुछ और आगे बढ़ी—"शायद कहानी नहीं, उपन्यास के किसी परिच्छेद में उलझ रहे हैं यह।" प्रायः एक घण्टा हमें आये हुए हो गया, तब से बराबर ही कुछ सोच रहे हैं। कविता, कहानी, लेख अथवा निबन्ध इन सब में इतनी उलझन नहीं हो सकती, वह तो क्षणिक उद्गार होते हैं। तुरन्त ही लिखने न बैठ जाओ तो सब मिट्टी में मिल जाए, और यह बराबर सोच ही रहे हैं, बस! अवश्य ही किसी गम्भीर विषय में उलझ रहे हैं। उनकी योग्यता और विद्वत्ता का ध्यान आते ही सहसा श्रीमती जी के दर्शनों की इच्छा और भी प्रबल हो उठी। न जाने कितनी रूपवती और गुणवती होगी वह, क्योंकि इन्हें कोई साधारण स्त्री कैसे पसन्द आ सकती है? इनके उपन्यासों की नायिकाएँ, इनकी कहानियों की पात्रियाँ सब एक से एक बढ़ कर होती हैं, तभी तो विवाह करना नहीं चाहते थे तब। किसी में कोई त्रुटि और किसी में कोई दोष निकाल कर प्रस्तावों को ठुकराते रहे हैं सदा। फिर यह तो स्वयं ही पसन्द की होगी। यह सब सोच कर मैंने निश्चय किया कि अवश्य ही बहू को देख कर लौटूंगी। भेंट-पूजा का क्या है, फिर भी दी जा सकती है। फिर मुझे भी अपनी प्रबल इच्छा के सामने झुक जाना पड़ा।

[३]

मटर की कच्ची फलियों का ढेर सामने पड़ा था, और वह चौकी पर बैठी मटर छील-छील कर कुछ खाती जा रही थीं, और कुछ कटोरे

में रखती जा रहीं थीं। पास ही बैठे दोनों बच्चे भी खाने मे होड़ लगा रहे थे। मैने सामने जाकर पूछा— "भूषण भैया कब छूटे जेल से। तुम तो मुझे पहचानती नहीं, वह मेरे भाई लगते हैं।"

"हाँ, वह तो कहते थे कि उनसे मिलने नहीं जा पाया— फ़ुरसत ही नही मिलती। उन्हें फ़ुरसत मिले तो हम सब एक दिन वहाँ आएँ।" बहू ने नमस्ते करके बैठ जाने के लिए कहते हुए कहा।

मैं भी चौकी के एक किनारे बैठ गई। मैंने कहा— "ऐसा क्या काम रहने लगा है अब उन्हें, क्या कोई नई पुस्तक लिख रहे हैं? इस समय भी दफ्तर में हैं— कब तक उठेंगे .....?"

"जाने जी! उन्हें तो बच्चों तक से बोलने की फ़ुरसत नही, कभी पूछा तो पूछ लिया— 'इन्हें दवा दे दी ..?' या 'खाना तैयार है ?' बस, और तो अपनी ही उधेड़-बुन में लगे रहते हैं। हमें क्या पता क्या कर रहे हैं?"

इतनी बात-चीत के बाद एक दम मौन से वातावरण भारी सा हो उठा। न मुझे कुछ कहना सुनना था— और न उन्हें ही। परन्तु इस इतने से समय के बीच मैंने कई बार युवती गृहिणी की बराबरी मे भूषण भैया को खड़ा करके अपनी कल्पना के सहारे इस जोड़ी को 'फिट' करना चाहा, पर ऐसा कर न सकी। रंग-भेद के अतिरिक्त प्रत्येक दिशा में मुझे आकाश-पाताल का अन्तर दीख रहा था। सिर के उलझे-

सुलझे रूखे-से बाल, हाथों में रंग-बिरंगी काँच की चूड़ियाँ, बढे हुए नाखून और श्याम रंग पर काली छींट की छपी खादी की धोती, बात-चीत करने का ढंग भी विपरीत। मन ऊबने-सा लगा और मैं फिर आने का वचन अपनी ओर से ही देकर खड़ी हो गई। घर में सब वस्तुएँ इधर-उधर फैली पड़ीं थीं। खाट पर कपड़ों का ढेर और आँगन में जूतों की नुमाइश सी लग रही थी। सामने ही नहाने की संगमरमर की चौकी पर साबुनदानी मे 'पियर्स सोप' की टिकिया पानी मे डूबी पड़ी थी। पास ही तेल की शीशी लुढक रही थी। कपडे कुछ निचोडे हुए पडे थे कुछ गीले। नौकर दोनों रसोई-घर में बैठे गप-शप उड़ा रहे थे। दो एक काले से कुत्ते इधर उधर बिखरी जूठन चाट रहे थे। मुझे ऐसा लग रहा था कि मानो यह भूषण भैया का घर न होकर कोई सराय है।

चौखट पर पैर रखते ही देखा कि वह अब खडे खडे ही मेज पर झुक कर कुछ लिखने लगे हैं, और फिर मैं ठिठक कर रह गई। उन्होंने वहीं से नौकर को आवाज लगा कर पूछा — "धोबी के यहाँ से जो चादर पीछे बाकी रह गई थी वह आई या नहीं... ?"

फिर सहसा कमरे से बाहर निकल आये। मैंने कहा— "पूरा एक घण्टा हो चुका मुझे यहाँ आये। तुम न जाने किस ढङ्ग के साहित्य-निर्माण मे व्यस्त हो ? क्या लिख रहे थे... कहानी, या कोई उपन्यास शुरू कर रक्खा है ?"

वह एक दम खीझ कर बोले— "खाक कर रक्खा है ! धोबी की धुलाई का हिसाब कर रहा था ।" और मै मौन स्तब्ध सी खड़ी की खडी ही रह गई । वह अपनी उसी शुष्क और व्यथित-सी हँसी को ओठों तक खींच कर बोले— "मेरे ही बारे में सोच रही हो न ? सोचो, सोचने का ही विषय हूँ मैं !" तभी गृहणी ने कमरे में प्रवेश कर गोद के बालक को उनकी ओर बढाते हुए कहा— "इसने तो रो रो कर मुझे परेशान कर दिया । तुम्हीं ले लो जरा देर को इसे !"

और मैंने भी उसी समय उत्तर दे दिया— "सोचने के ही नहीं, कहानी के भी विषय हो तुम ।"

स्पेशल ट्रेन

[१]

सीलिंग फ़ैन की तेज हवा खस की भीगी हुई टट्टियों से छन-छन कर कमरे को स्वर्ग बना रही थी, मानो जून के महीने में महा-पूस की ठंडी हवाएँ कमरे में बन्द कर रक्खी हों। सफाई का तो कहना ही क्या? सिर का बाल भी ढूँढे से मिल जाता। चमचमाता हुआ "मार्बिल" का फ़र्श, रोगनी दीवारें, जिन पर कहीं तिल भर भी दाग नहीं दीखता, और फ़र्नीचर! वह तो जैसे अभी अभी खरीदा गया हो। विलायती शीशे की आलमारी में किताबें चुनी हुई एक ओर रक्खी हैं। मेज कुर्सियाँ बढ़िया और करीने से लगी हुई हैं। एक घूमती हुई कुर्सी पर मौलाना साहब बैठे 'काला चाँद' की बीड़ी के कश पर कश खींच रहे हैं। उनके सामने बड़ी-सी मेज पड़ी है। बीच में विलायती फूलों का

'गुलदान' महक रहा है और बराबर में छोटी मेज पर 'टेलीफोन' लगा हुआ है और वह बिलकुल शात, मौन तथा सुखद तद्रा में तल्लीन हैं, जैसे बहिश्त का भरपूर आनन्द कोई फरिश्ता ले रहा हो। पर आखिर यह मृत्युलोक ही ठहरा न ? सरकारी दफ्तर के चपरासी ने स्याह-कलम की चमकती हुई 'ट्रे' में रक्खा हुआ कार्ड मिनिस्टर साहब के सामने कर दिया, और तपाक से सलाम झुका कर एक ओर को तना हुआ खड़ा रहा, मौलाना साहब जैसे सोते से सहसा जाग पड़े— "ऐं..., यह क्या है ?"

"हुजूर से मुलाकात फर्माने कोई साहब तशरीफ लाये हैं...। सलाम बोला है .. और यह नेम-कार्ड .. ।" कह कर चपरासी ने 'ट्रे' और थोडी आगे को कर दी।

मिनिस्टर साहब ने चश्मे को भले प्रकार कानों पर जमाते हुए कार्ड को झुक कर देखा, बोले— "यह तो उर्दू मे नहीं है, जाओ इसे वापस ले जाओ।" स्टैनो पीछे की ओर बैठा कोई जरूरी कागज छाप रहा था, तुरन्त उठ कर आया, कार्ड देख कर बोला— "ओ! अंग्रेजी मे है, सरकार! पुलिस कप्तान मिस्टर ब्रुक आपसे मिलना चाहते हैं।"

"हमसे मिलना चाहते हैं ? लीगी हैं वह ?" मौलाना साहब ने बीडी का धुँआ फेंकते हुए पूछा।

"नहीं साहब, अँग्रेज हैं।"

"अँग्रेज हैं।" कह कर वह सीधे हो, सँभल कर बैठ गये, फिर बोले— "अच्छा ..., उनसे जाकर हमारा सलाम बोलो और कहना कि आपको तकलीफ उठाने की कोई जरूरत नहीं है, हम खुद बगले पर जाकर उनसे मिल लेंगे...।" मौलाना साहब ने हुक्म सुना कर फिर धुँआ फेंकना शुरू किया।

सामने ही सेक्रेटरी साहब बैठे फाइलों को देख रहे थे, बोले— "लेकिन आप वहाँ... ?"

"सो क्या हुआ ? वह अँग्रेज है या दिल्लगी ? मि० पांडे, आपको बीच में बोलने का कोई हक्क नहीं।" सेक्रेटरी साहब ने एक बार सिर से पैर तक मौलाना साहब को देखा और फिर अपने काम में जुट गये। चपरासी वापस जाकर फिर लौट आया— "हुजूर... कोई जरूरी काम .. कहते हैं- भला आपको तकलीफ दूँ मैं।"

"अच्छा...अच्छा, ठहरो हम चलते हैं।" कहते हुए मिनिस्टर साहब कुर्सी से उठ खड़े हुए। स्टैनो ने चपरासी को इशारा किया— "बुला ले यहीं।"

मि० ब्रुक मौलाना से हाथ मिला कर फिर मि० पांडे की ओर बढ़े, उन्होंने पहले ही हाथ बढ़ा दिया और फिर आदरपूर्वक बैठाने के लिये कुर्सी खींच ली, किन्तु मौलाना साहब ने खडे खडे ही जानना चाहा कि वह किस लिये आए हैं। मि० ब्रुक ने कुछ कहना चाहा, तभी सेक्रे-

टरी साहब को आदेश मिला कि वहीं ब्रुक साहब से बातचीत करके, उर्दू मे उसका तर्जुमा कर दे।

मि० पाडे ने सबको बैठ जाने का आग्रह करते हुए ब्रुक साहब से बातचीत शुरू की और मिनिस्टर साहब को समझाया कि "दंगे का खयाल बढ़ता जा रहा है, कुछ पुलिस बढ़ाने की जरूरत है, आप क्या हुक्म देते हैं ?"

मिनिस्टर साहब ने थोड़ी देर सोचने के बाद जवाब दिया— "बढ़ा लो, जितनी जिला लीग कमेटियाँ हैं सबको भर्ती का नोटिस दे दिया जाय। इस बात का खयाल रखा जाये कि तनख्वाह कम न हो और रहने के लिए हर एक को बँगला मिले।"

मि० पाडे ने किसी प्रकार संयत होकर साहब का मंशा ब्रुक साहब को समझा दिया। वह जैसे आकाश से गिर पड़े— "एँ, बँगला ? हर एक कान्स्टेबिल को ? और मुस्लिम लीग मे तो सभी नवाब और जमींदार या ताल्लुकेदार हैं, वह इतनी छोटी 'पोस्ट' को कैसे मंजूर कर सकते हैं ?"

मि० पाडे ने यही सब मौलाना साहब को समझा दिया। उन्होंने फिर थोड़ी देर सोच कर कहा— "मंजूर करेंगे क्यों नहीं ? जरूरत पड़ने पर तनख्वाह और बढ़ाई जा सकती है।" सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इतने ही मे चपरासी फिर आया— "हुजूर ! बाहर भीड़ बढ़ती

ही जा रही है। जाने क्या तमाम शहर के धोबी, लुहार, जुलाहे और कत्तिनें टूट पड़ी हैं। जूते बनानेवाले अलग शोर मचाने को तैयार खड़े हैं।"

"एँ, तैयार खड़े हैं! क्या 'काफ़िर' लोग हैं? उन्हें फ़ौरन गोली से उड़ा दिया जाय।" मिनिस्टर साहब ने हुक्म दिया।

"नहीं हुजूर। वह काफ़िर नहीं हमजात ही हैं, कहते हैं माल नहीं मिलता। हम बेकार बैठे हैं, बाल-बच्चे भूखों मरे जा रहे हैं, उन्हें माल मिलना चाहिए और राशन की मिकदार बढ़नी चाहिए।"

"हूँ, तो क्या ये भी मुस्लिम लीगी हैं सब?" मिनिस्टर साहब ने पूछा।

"नहीं सरकार, मुसलमान हैं। कहते हैं कि सुना है मुस्लिम लीग ही तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमानों की सरकार बनी है। इसीलिए अपना अपना दुखड़ा रोने आये हैं।"

"नहीं, उनसे कह दो हमारे पास ऐसा कोई इन्तजाम नहीं है, वह सब 'कांग्रेस' से कहें, या फिर लीग में शामिल हों, तब कोई महकमा इन लोगा के लिये खोला जा सकता है।"

चपरासी ने वापस आकर कहा— "हुजूर से दो बातें करना चाहते हैं बस . ।"

मिनिस्टर साहब ने घड़ी की ओर देख कर कहा— "अच्छा अच्छा,

इस वक्त तो हम खाना खायेंगे, शाम को अमीनाबाद पार्क में उनसे मुलाकात हो सकती है, हमें अपना जूता लेने वहाँ जाना है, कह दो वहीं मिलें ...।"

मिनिस्टर साहब 'लंच' के लिए चले गये, और मि० पाडे तथा ब्रुक साहब बातें करते हुए बाहर निकल आये।

[२]

आज लखनऊ के हर एक चौराहे और हर एक दूकान पर इतनी भीड है कि पहले कभी भी नहीं देखी गई। जिसे देखो काम मे इतना व्यस्त है कि दो बातें करने की भी फ़ुरसत नहीं, कोई साबुन-तेल खरीद रहा है, तो कोई मजन-ब्रुश ही पसन्द कर रहा है, कोई दवाइयो का पैकिंग बगल मे दबाए भाग रहा है, कोई मेवा और मसालों की पुड़िये बँधवा रहा है। मोटर और लारियाँ, तागे और इक्के सब स्टेशन की ओर दौडे जा रहे हैं, रिक्शावालों ने अलग होड लगा रखी है, इंसान में पशुबल दीख रहा है। करें भी क्या ? ठीक छः बजे 'स्पेशल ट्रेन' नैनीताल के लिए छूट जायगी। सरकारी दफ़्तर सब वहीं जा रहे हैं, इसीलिये मिनिस्टरों से लेकर चपरासी तक व्यस्त हैं। मिनिस्टर आदेश दे रहे हैं, सेक्रेटरी सब सामान को निगाह से तोल रहे हैं, क्लर्क और स्टैनोग्राफर अपना सामान चुन कर रखते जाते हैं, चपरासी बक्सों को झाड़-पोंछ कर ठीक कर रहा है, तो कहीं दावात-क़लम साफ़ करके रक्खे

जा रहे हैं। आज तो आखिरी दिन है न ? कुछ ही घंटे बाकी हैं, और काम अभी बहुत पड़ा है। जिसे देखो वही सतर्क दीख रहा है— "कोई चीज छूट न जाए, कुछ टूट न जाए, सरकारी माल ठहरा, खराब होने पर आफत टूट पडेगी।" 'स्टैनोग्राफर' अपने अपने 'टाइपराइटर' झाड़-पोंछ कर बक्सा में सँभाल-सँभाल कर रख रहे हैं मिनिस्टर लोग जरूरी फाइलों को आँखों से निकाल रहे हैं। सेक्रेटरी लोग अलग कागजों को छाँट रहे हैं। ठीक समय पर सब लोग तैयार होकर स्टेशन पर पहुँच जाएँ, ऐसा न हो कि कोई पीछे छूट जाये, बड़ी हिमाकत की बात होगी।

मौलाना साहब कुर्सी पर लेटे अखबार पढ़ने में व्यस्त हैं। जेब में हाथ डाल कर देखा तो बीड़ी खतम हो चुकी। चपरासी को घंटी बजा कर बुलाया और हुक्म दिया— "दो बण्डल काला चाँद ले आओ फौरन।"

स्टैनोग्राफर ने सलाम झुका कर कहा— "तैयार हो जाइए साहब। स्पेशल छूटने में कुल एक घंटा बाकी है। चपरासी किधर है ? लिस्ट बना ली जाय सामान की।"

मौलाना साहब ने आँखें फैला कर स्टैनोग्राफर को सिर से पैर तक देखा। कहा— "अरे, सामान, कैसा सामान ?"

"सरकार, गवर्नमेन्ट के दफ्तर नैनीताल जा रहे हैं, जल्दी तैयार हो जाएँ आप, कार बाहर तैयार खड़ी है।"

"नैनीताल। नैनीताल जाकर क्या होगा ? यहाँ खस की टट्टियाँ और

बिजली के पखे सभी कुछ मौजूद हैं। वहाँ क्या यहाँ से अच्छा हो सकता है कुछ ? कह दो हम नहीं जायेंगे, यहीं रहेंगे ...... ।"

"ऐं, आप नहीं जायेंगे ...... यहीं रहेंगे ..... ?" स्टैनोग्राफर मुँह फैलाए साहब की ओर देखता ही रह गया। तभी सेक्रेटरी साहब ने कमरे में प्रवेश कर, चपरासी और स्टैनो को डाँटते हुए कहा—"तुम लोग सामान रखवाने आए थे कार पर, या तमाशा देखने ? सिर्फ आधा घंटा बाकी रह गया है अब। चलो, लिस्ट वगैरा बनती रहेगी गाड़ी में .. . । जल्दी करो।"

मौलाना साहब बीड़ी सिलगाने लगे। सेक्रेटरी साहब ने उनकी ओर घूम कर कहा— "चलिए आप बैठिये, यह लोग सामान उठा लायेंगे। आप सिर्फ इन्हे बतला दीजिए ...... ।"

लेकिन उन्हे जैसे बाध्य कर रहे हों यह लोग, अभी यह अखबार भी पूरा नहीं देख पाये थे। झुँझला कर बोले— "अरे, आफत क्यों मचा रक्खी है सब लोगों ने ? हमारा सामान ही क्या है— एक गठरी और टोपी बस !"

गृहिणी

भाभी को देखने का चाव हम सभी के मन में खूब था। विनय भैया जैसे कलाकार और सुरुचिपूर्ण युवक की पत्नी न जाने कितनी चतुर, सुन्दर और सुशील होगी– इस कल्पना ने जैसे हमारी इच्छा और प्रबल कर दी और उस दिन सभी ने उन्हें बाध्य करके वचन ले ही लिया कि 'वसंत भ्रमण' करने इस बार सब मिलजुल कर किसी बाग या नदी किनारे के किसी खेत मे अवश्य चलेंगे।

उन दिनों मटर की फली, गन्ने और हरे चने का मौसम था। ताजे-ताजे तोड़ कर खाने के विचार मात्र से ही मुँह में पानी भर-भर कर आने लगा, और ठीक पचमी के दिन विनय के घर जाने का निश्चय हुआ, क्योंकि वहाँ से भाभी को भी साथ लेना था।

था, और इस मँहगी के जमाने मे कौनसी चीज खोजी जाए, जो उनके उपयुक्त भी हो और आसानी से मिल भी सके ?

कभी ढाके की साडी देने का विचार होता तो कभी जैमोर का बना 'ड्रेसिङ्ग-सेट' और कभी चाँदी की 'सिदूरदानी' देना ठीक लगता तो कभी कोई पुस्तक ही... । पर समझ मे नहीं आया कि कौन सी पुस्तक ? क्योंकि नई दुलहिन होतीं तो 'विवाह और प्रेम' जैसी पुस्तक दी जा सकती थी, पर वह तो अब दो बच्चो की माँ थीं। कढ़ाई-बुनाई या सिलाई अथवा पाक-विज्ञान या सन्तति-शास्त्र जैसी पुस्तके भी उन्हे देना कुछ हास्यास्पद सा प्रतीत हुआ । आखिर वह गृहिणी थीं, कोई अबोध बालिका तो थी नहीं जिसे यह सब सीखना समझना बाक़ी होता । आखिर मैने तय किया कि घर मे जो चाँदी की डिबिया पान रखने को पड़ी है, वही उन्हे पानो से या इलायचियो से भर कर दे दूँ इस समय तो, फिर जब कभी यहाँ आएँगी तो जो कुछ होगा भेंट करूँगी। आखिर कभी तो हमारा निमंत्रण स्वीकार करेगी ही और कभी तो विनय भैया को उन्हे साथ लाने का सुभीता मिलेगा ही। अब पहिली भेंट तो इस 'पिकनिक' के बहाने हो ही जायगी, फिर आने मे वैसा सकोच नहीं रहेगा ।

लारी में सारा सामान लाद कर ठीक सात बजे हम सब लोग उनके घर पहुँच गये, नीचे एक बूढ़ा सा दरबान हुक्का गुड़गुड़ा रहा था, और ऊपर से बेहद शोर गुल सुनाई पड़ रहा था। मन को कुछ सतोष

अजीब उलझन में थी— किससे क्या पूछूँ और कहाँ बैठूँ ? कमरे के बीचोबीच खड़ी लड़की कपडे पहना देने के लिए गला फाड़ फाड़ कर रो रही थी और उसके पास ही एक दो ढाई वर्ष का लड़का हाथ मे धुला हुआ जाँगिया लिए जमीन मे लोट रहा था, शायद जाँगिए मे नाड़ा डलवाने को हठ कर रहा था। हम सब हक्के बक्के से खडे रहे।

थोड़ी देर बाद, कुछ साहस करके मैंने श्रीमती जी से पूछा— 'विनय भैया कहाँ हैं .. ?'

'नहा रहे हैं ... ।' कहती हुई वह ज्यों की त्यो अपने काम मे व्यस्त बैठी रहीं। हम सब छज्जे पर टहलते-टहलते नीचे सड़क की ओर देखते रहे। मन बड़ा उतावला हो रहा था— 'बडी देर कर दी इन लोगों ने चलने के लिये !'

थोड़ी देर के बाद विनय नहा कर आ गए। बालो मे पानी टपक रहा था। हाथ मे कघा लिए आकर बोले— 'अरे, खडे ही हो सब लोग ? बीबी ! आओ बैठो.. ।' और फिर जल्दी-जल्दी उन्होंने कुर्सिया पर पडे कपडे और कपड़ो के नीचे दबे बच्चो के खिलौने उठा कर खाट पर डालना शुरू किया। हम लाग भी सहारा पाकर उनकी सहायता मे जुट गए, पाँव ता खडे खड़े दुखने ही लगे थ। बैठने के बाद विनय ने उन्हीं श्रीमती को सम्बोधित करते हुए कहा— 'माया, बीबी आई हैं और तुम न जाने किस उधेड़-बुन मे लगी हो। पान वगैरह मँगाओ, किसी से कहना, छ: बीडे लगवा लाए, और थोडी तम्बाकू भी... ।'

किन्तु तुरन्त ही— 'मै लाता हूँ।' कहते हुए वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए नीचे उतर गए, और माया वहाँ से उठ कर पीछे खुली छत की ओर चली गई। उनके पैरों की उँगलियों के बिछुवे और पायल झन-झन करके बज उठे। सबका ध्यान सहसा उधर ही आकर्षित हो गया। सामने ही रसोई थी, उसमे बैठी कोई महिला इधर को पीठ किए चूल्हे पर रखी कोई चीज चला रही थी, और एक दस-बारह साल की लड़की सिल पर कोई चीज पीस रही थी।

बहू शायद गुसलखाने से कघा लेने गई थी, कमरे में खड़ी लड़की के बाल काढने लगी। तभी वह बालक और भी चीखने लगा — 'पैले नाला दाला जी...।' पर जैसे उन्हें इन बातो का भली प्रकार अभ्यास हो गया था। वह उसी निश्चल भाव से लड़की के बाल खींचती रहीं— और बालिका मुँह बना-बना कर दोनो हाथों से अपनी कनपटी दबा कर व्यथा को हल्का करती रही। तभी विनय भैया पान लेकर आ गए।

पान देने के बाद वह बालक को चुप कराने की असफल चेष्टा करके मेज के कोने पर जा बैठे— बिलकुल निर्विकार भाव से।

मैने कहा— 'बड़ी देर कर दी भइया! तुमने तो...?'

बोले— 'नल मे पानी थोड़ा थोड़ा आ रहा था। शायद नीचे का नल खुला पड़ा होगा— वैसे तो मै जल्दी ही नहा लेता हूँ......।'

और तभी सिल के पास बैठी बालिका ने कहा— 'कढ़ी चावल बन गए भैया, आओ खा लो। थाली लग गई है।'

'आया... ।' कहकर उन्होंने हम सबकी ओर देखते हुए कहा— 'थोडे-थोडे कढी चावल खा लो।'

'एँ कढी चावल ? सुबह आठ बजे कढी चावल खाले ... ? क्यों, यह इतना खाना क्या मैं अपने ही पेट के लिये बना कर लाई हूँ ? तुम सब घर से कढी चावल खा कर चलोगे ?' मैंने कहा।

विनय भैया जैसे पहाड़ से गिर पडे— 'ओ, मैं बिलकुल भूल गया था बीबी। रात को ११ बजे के क़रीब यह तय हुआ कि हम 'पिकनिक' पर नहीं जा सकेंगे। सोचा था, तुम्हें सवेरे ही खबर करा दूँगा, बड़ी गलती हुई .... ।'

श्रीमती जी तब तक बच्चो को रसोई में बैठा कर शायद नहाने चली गई थीं। विनय ने आवाज लगाकर कहा— 'माया, थालियाँ ठीक करो ... ।'

मैंने विरोध करते हुए कहा— 'बस रहने दो, तुम भी खूब हो। अच्छा चकमा दिया . ।'

निर्मल बाबू भी बोल उठे— 'यह सामान जो हमारे साथ है। वह कढी चावल न सही फिर भी उससे कम स्वादिष्ट नहीं, न मानो तो चख कर देख लो . ।'

'सो मै जानता हूँ, बहुत बार खा आया हूँ, पर क्या करूँ ? मेरी फूटी किस्मत !' विनय ने कहा।

'आखिर कारण क्या है ? चल क्यों नही रहे ? उस दिन तो सब निश्चय हो ही चुका था। अब वक्त पर क्या मक्खी ने छींक दिया ? व्यर्थ इतना झंझट, और देर अलग हुई।' निर्मल ने उठते हुए कहा।

'डॉट लो भैया ! जितना कह सको कह लो। अभी तुम्हें क्या पता ...... ? खैर गलती तो मेरी ही है। खबर तक नही करा सका।' विनय ने क्षुब्ध होकर कहा।

मेरा मन भी बड़ा खिन्न हो उठा था। मैने कहा— 'बात भी तो मालूम हो कि क्यों चल नही रहे ?'

विनय ने इधर उधर देख कर कहा— 'रात ११ बजे माया के पेट मे बड़ा दर्द उठा और मुन्नी का गला कई दिन से खराब है। मुन्ने का कान बह रहा है, और बहिन को तीसरे दिन मलेरिया तंग करता है। माया की आँखों में कास्टिक भी लगवाना है ..... ।'

हम सब मुँह फाडे इन अनेक कारणों को ध्यान से सुन रहे थे। निर्मल ने कहा— 'और और किसे क्या-क्या है ? सोच-सोच कर बताते चलो ....। आखिर यह सब कहने का तात्पर्य ?'

विनय ने झेंपते हुए कहा— 'तात्पर्य क्या भाई, हम सब डाक्टर के यहाँ जा रहे हैं।'

प्रवास

"केवडे में बसा दिए, हरियाले मुलाम।"

सिघाडेवाले की आवाज सुन कर मुन्ना झट पलग से कूद कर बाहर निकल गया— "अम्मा! सिंघाडेवाला आ गया...... हम तो सिघाडे लेंगे।"

गंगा ने उसे पकड़ना चाहा— "आज कल किसी का क्या भरोसा? न जाने कितने फूल से बच्चे निर्दयता से काट काट कर डाल दिये, बिलकुल गाजर मूली की तरह। आप रोकती भी नही बीबी जी! आखिर यह बुड्ढा भी तो उसी जात का है?"

मैंने उसे समझाते हुए कहा— "गंगा! सभी आदमी तो दुनिया में एक से नहीं होते, इस बुड्ढे के घर में क्या बच्चे नहीं हैं? कितनी बार मुन्नू के जूते और कपडे माँग माँग कर ले जाता है अपने नाती नतनियो के लिए, वही क्या आज ऐसा हो जायगा? जा, तू भी चली जा न? पूछ किस भाव दे रहा है सिंघाडे?"

उससे मैने यह सब कह तो दिया, किन्तु मन न जाने कैसा होने लगा, और जी न माना तो मैं भी बाहर कुर्सी पर आकर बैठ गई। गगा मुन्ने को घसीट रही थी और सिघाड़ेवाला उसे डॉट रहा था— "क्यों तंग करती है बच्चे को ? तेरा क्या मॉग रहा है— तू नौकर है या कोई मालिक . ?"

और फिर बुड्ढे ने कचिया से दो सिघाडे अपने कॉपते हुए हाथों से छील कर मुन्ने को थमा दिये— "लो खाओ, हम तो तुम्हारी ही बदौलत जीते हैं, भैया। जब बडे हो जाओगे, तब खूब सौदा खरीदोगे— बीबी जी तो बहुत भाव ताव करती हैं— मुन्ना ऐसा नहीं है।"

मुन्ना बहुत प्रसन्नतापूर्वक अपने नन्हे-नन्हे दॉता से सिंघाडे चबाते बोला— "तुम्हें अपनी छोटी सी साइकिल पर घूमने ले चलूॅगा बडे मियॉ, गगी को नही।"

सिंघाडेवाले ने मुन्ने को अनेकों आशीर्वाद देते हुए मुझ से कहा— "छ: आने सेर दिये हैं, आज तो ले लो सेर दो सेर।"

मैंने कहा— "बाजार में तो चार आने सेर बिक रहे हैं और तुम दोगे छ: आने— फिर कहते हो बीबी जी भाव ताव करती हैं।"

उसने सेर भर सिघाडे तोल कर मेरे पैरा के पास डाल दिये। बोला— "चलो चार ही आने सही, १५ दिनों से बच्चे भूखा मर रहे हैं, बाप उनका पकडा गया इस दगे में, इस झगडे ने बर्बाद कर दिया

गरीबों को तो। बड़े आदमियों के मजे हैं बस। बहुतेरा समझाया कम्बख्त को, लालच में आकर मुहल्ले के गद्दियों के साथ निकल गया, फिर सुना कि गिरफ्तार हो गया ...।"

"एँ, लालच मे आकर! लालच कैसा?" मैंने आश्चर्यचकित हो कर उससे पूछा। "मुझे क्या पता जी, जैसा कोई करेगा, वैसा भरेगा। हमारे मुहल्ले के गद्दी बड़े ., क्या पता जी, सुना है कि दूध मे कुछ मिला रहे थे— या मिला दिया था— आवारे लोगों का क्या है जी!" बुड्ढे ने बड़ी उदासीनता से उत्तर दिया।

इतने ही मे पड़ोस के वकील साहब आकर कहने लगे— "क्या खरीद रही हैं? अभी सुना है कि किसी जगह फलों मे जहर का इंजेक्शन लगा हुआ देखा गया है ...।"

मेरा मुँह फक पड़ गया, पर बुड्ढा जरा भी विचलित नहीं दीखा। हँस कर बोला— "यह कमीनों का काम है बाबू जी। सुना मैंने भी था— लेकिन खुदा न करे जो ऐसा काम कोई करे। देखिये, चने के साथ घुन पिसता है। लड़का पकड़ा गया। उसने कुछ किया या न किया, लेकिन खोटी सगत का फल भोगना पड़ा हम सबको। चार पैसे का सौदा बेच कर पेट में डाल लिया करते थे दो दाने, अब हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। अभी मँहगी से पीछा छूटा नहीं कि यह नई आफत सिर पर आ गई, बच्चे भूखों तड़पने लगे। तब आज सिर से कफन बाँध कर घर से निकला हूँ।"

मैंने देखा वह कुछ उत्तेजित सा हो उठा। उसे समझाते हुए मैंने कहा— "नहीं, बडे मियाँ! तुम्हें यहाँ कोई डर नहीं है। आखिर और लोग भी तो यहाँ काम करते ही हैं, ग्वाला, भिश्ती, धोबी, उन्हे ही क्या डर है? हालाकि उन सबने अब पिछले दिनों आना छोड़ दिया था— लेकिन कहाँ बीचती है? एक दूसरे के बिना काम चल ही नहीं सकता।" इतने ही मे चिक बनानेवाला आकर खडा हो गया— "माफ करना बीबी जी। यह चिक दो ही बन पाई हैं, बाकी चार फिर लाऊँगा। क्या बताऊँ बाँस आ सके न सुतली, रंग थोड़ा बहुत घर मे पड़ा भी था। लड़ाई ने तबाह कर दिया, मेहनत मजदूरी से भी हाथ धोना पडा ....।"

मैंने कहा— "लड़नेवाले भी तो हम तुम लोग हैं, भैया। यह बात पहिले ही सोची जाय, तो लड़ाई होवे ही क्यों?"

चिकवाले ने अपने फटे और गन्दे कपडों को झाड़ते हुए कहा— "तोबा तोबा! हम तो तुम्हारे ही हैं बीबी जी। यह बात मत कहो, लड़नेवाले जानें, हमने तो अपने मुहल्लेवालों से यह तय कर लिया है, न तुम लड़ो, न हम किसी से कुछ कहें। सब एक दूसरे की मुसीबत में काम आते रहे हैं— और आते रहेगे। कोई बीस घर बनिये बामनों के होंगे, और इतने ही हमारे। हमने कह दिया तुम सब बेफिकर होकर सोओ, और हम जागेंगे। क्या मजाल जो कोई आँख उठा कर देख भी ले। उस दिन प० भोलानाथ के यहाँ लकड़ियों की ज़रूरत थी,

बिचारे डर के मारे बाहर नहीं निकल सकते थे, मैंने कहा— 'मैं लाऊँगा', और तुरन्त टालवाले से ताला खुलवाया जाकर— जान-पहचान का था। तीन घड़ी के भाव सूखी चन की उठा लाया उसके यहाँ से। और देखना जी, यही एका केर्चावालों ने अपने मुहल्ले में कर रक्खा है, सदर लालकुर्ती का तो आपने सुना ही होगा— भैया जी का नाम भी आपने सुना होगा— राजा आदमी ठहरे, उन्होंने कुरान शरीफ की कसम, खुले आम हिन्दू मुसलमानों से यह कहा है कि देखो इधर कोई झगड़ा न हो, हम दोनों भाई भाई हैं, सब मिल कर जैसे रहते आये हो रहो। सब एक ही खुदा के बन्दे हैं...। हाँ तो— कुछ पैसे मिल जाते सरकार, रोजगार चौपट हो गया। आप ही लोगों की मजदूरी करके पेट भर लिया करते थे ...।"

मैंने कहा— "अच्छा दो रुपये ले जाओ अब तो— पूरे पैसे तब दूँगी जब चार चिके और ले आओगे।"

चिकवाले ने अपनी चिपकती आँखें विस्फारित करते हुए कहा— "मेरा ऐतबार नहीं रहा क्या बीबी जी?"

मैंने कहा— "ऐतबार तो तुम्हारा दस वर्ष से करती आ रही हूँ, लेकिन फिर लड़ाई दगे का बहाना लेकर महीनों टालते रहे, तब?"

उसने अपने पान से लिपे हुए घिनौने दाँत निकालते हुए कहा— "न करे खुदा ऐसा, अमन रहे बस, इतवार तक वह चारों चिकें

जरूर आ लेगी। और अब की मुन्ने के खेलने को एक छोटी सी कढ़ी भी लाऊँगा बना कर। क्यों मुन्ने मियाँ ?" और फिर मुन्ने को गोद में उठा लिया उसने।

वकील साहब जो इतनी देर से चुप बैठे थे, बोले— "थोड़े दिन की बात है मियाँ! यहाँ के वहाँ और वहाँ के यहाँ, फिर कहाँ बीबी जी और कहाँ तुम ? तुम्हें सबको पाकिस्तान मे जाकर रहना है— ऐसा इन्तजाम होने वाला है।"

चिकवाले के हाथ से उसका "छुरा" छूट पड़ा— और सिंघाडे वाला एक दम बैठे से खड़ा हो गया— "यह क्या कह रहे हैं हुजूर! और लोगों से भी अदला बदली की बात सुनी थी— लेकिन आप तो पढ़े-लिखे हैं, हमने तो यह सब गप्पबाजी समझ रक्खी थी भला यह कैसे मुमकिन हो सकता है ? यहाँ हमारे घर बार हैं— गरीब आदमी ठहरे, कच्चे-पक्के झोंपड़े जैसे तैसे बना रक्खे हैं— मजदूर आदमी के लिये तो वही नियामत है। दूसरे वतन में कैसे जा सकते हैं ? हम तो वहाँ की बोली भी नहीं समझ सकते ?"

वकील बाबू ने कहा— "तुम्हारे तो कच्चे पक्के झोंपड़े ठहरे, लेकिन उनके दिल से पूछो— जिनकी आलीशान कोठियाँ और हरे भरे बगीचे छूट जायेंगे— जैसे यह भैया जी ही देखो— लाखों की जायदाद छोड़नी पड़ेगी। क्या हुआ यदि औने-पौने दामों में हम लोगों ने खरीद

"क्यों छोड़ना पडेगा साहब ! जबरदस्ती निकाल दिये जायेंगे अपने
ातन से ?" — चिकवाले ने पूछा ।

"वतन ! अरे भई, वतन तो वह लोग इसे अपना समझते ही
ाहीं ।"

"कौन लोग जी .. ? न समझें वह ! जो समझते हैं वह क्यों
ाायें ?" सिंघाडेवाले ने खाँसते खाँसते कहा—"यहीं पैदा हुए, बाप दादे
के जमाने से न जाने कब से रहते आ रहे हैं, अब घर बार छोड़ देंगे
ाी— लो भला — क्या बेवकूफी है . ?" सिंघाडेवाला अपना टोकरा
उरकाने लगा ।

इतने मे मास्टर साहब आकर बोले— "क्या मसला हल कर रहे
हो, वकील साहब ? आज कचहरी की छुट्टी है क्या ?"

"अरे भाई, छुट्टी ही है हफ्तों से । तुम्हारा क्या है ? छुट्टी में भी
तनख्वाह चलती रहती है, यहाँ तो पेट की भी छुट्टी समझनी चाहिये
छुट्टी के दिन । पाकिस्तान में जाने का जिक्र चल रहा था । इन लोगों
का यह अदला बदली का सवाल पेश है न ?"

"हाँ— हाँ— बडे जोरों की अफवाह है यह, न जाने क्या होने
वाला है ? वहाँ से जो लोग यहाँ आकर बसेंगे, उन्हें रहने को
जगह— और खाने पहनने को अन्न-वस्त्र चाहिये, और इधर अपना ही
नहीं पूरा पड़ता ।" मास्टर साहब ने कुर्सी खींचते हुए कहा ।

"तुम भी खूब हो। अरे वहाँ से आने वालों के साथ साथ, यहाँ से जो बदले में जायेंगे उनकी तमाम जगह खाली हो जायगी, और उनका खाना कपड़ा भी बचेगा— उसे आने वाले काम मे लायेंगे।"

वकील साहब नगर की आबादी का हिसाब लगाने लगे। मास्टर साहब ने कागज़-पेंसिल अपनी जेब से निकाल कर उनके सामने मेज पर डाल दिया। फिर बोले—"लेकिन दोस्त, इन मस्जिदों का क्या होगा? यह तो धार्मिक स्थान ठहरे।"

"अजी होगा क्या? देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित कर दी जायेंगी इनमे। हमारे यहाँ तो एक दो नहीं, तेंतीस करोड़ देवता हैं, और छोटे मोटे अलग रहे। इसानों से भी जयादा सख्या है देवताओं की। बाकी जो बड़ी बड़ी मस्जिदे हैं, उनकी धर्मशालाएँ बन सकती हैं, आखिर जो लोग यहाँ आकर बसेंगे— उनके बाल-बच्चों की भी तो शादियाँ होंगी- बाराते ठहराने के काम आ जायेंगी वह सब।" वकील साहब ने समस्या को हल करते हुए कहा।

"हाँ...... आँ, अच्छा और यह कब्रिस्तान? यह तो पचायती ठहरे, बिकेंगे क्या यह भी? लेकिन बिके भी अगर तो ख़रीदने वालों की तो कमी होगी नहीं क्योंकि सभी जगह मौके की हैं, ऐसी बढिया कोठियाँ बनेगी कि बस, स्कूल और सरकारी दफ़्तर भी बन सकते हैं,

बीघों जमीन जगह जगह निकलेगी। लेकिन लाखो पंचों मे इनका रुपया कैसे बाँटा जायगा ?" मास्टर साहब फिर सोच में पड़ गए।

"तुम भी खूब हो भई! यह ज़मीनें क्या इनकी खरीदी हुई थोडे ही हैं जो बेच जाने का हक़ होगा इन्हें ? यह तो हमीं तुम लोगों की कब्जा ली गई हैं, इधर सेठ हरवशलाल की कोठी के पीछे जो क़ब्रिस्तान है, वह उन्हीं की ज़मीन में बना लिया गया है, उसका कागज उनके पास मौजूद है— उस दिन उनका कारिन्दा आया था मशवरा करने।" वकील साहब ने कहा।

"अच्छा ?" मास्टर साहब सँभल कर बैठ गए— 'खूब, तब तो पाँचों घी में हैं। एकाध टुकड़ा हमें भी कहीं दिलाने की कोशिश करना भाई! मकान मालिक तो बड़ा अहसान सा दिखलाते रहते हैं हम पर। अपनी कहीं छोटी मोटी झोंपड़ी डाल लेंगे।"

"हाँ . हाँ— आखिर इतनी जमीनें क्या बेकार थोडे पड़ी रहेंगी इसी तरह। वह जो पूरब वाला क़ब्रिस्तान है, सिविल लाइन के पास— देखिये कितनी लम्बी चौड़ी जमीन है वह, सुना है कि यहाँ के लाला लोगों ने निगाह जमा रक्खी है उस पर, नक्शा-वक्शा भी बनवा रहे हैं— मैं भी सोच रहा हूँ एक टुकड़ा मिल सके उसमें से, बडे मौके की जमीन है। तुम्हारे लिये भी खयाल रक्खूँगा।" कहते हुए वकील साहब खडे हो गये। मास्टर साहब बच्चों को घेर कर बैठ गए और

सिंघाडेवाला तथा चिकवाला एक ठंडी साँस लेकर खडे हो गए— "या खुदा क्या होनेवाला है ? अभी तक तो और ही भतेरी परेशानियाँ थी— अब घर और वतन भी छूटने वाला है, इससे तो मौत ही भली ..... ।" और मैं खड़ी खडी सोच रही थी— "इन सबके चले जाने से कैसे काम चलेगा ?"

विडम्बना

साहित्य-जगत् में उसे कौन नहीं जानता था ? कविताएँ उसकी हृदय को छूती हुई उसके पार हो जाती थीं। कहानियाँ उसकी मस्तिष्क मे एक हलचल पैदा करके क्षण भर के लिये मानव को स्तब्ध कर देती थीं, और .. और उसके निबन्ध पढ़कर लोग दाँतो तले अँगुली दबा लेते थे। ऐसा विलक्षण चमत्कार था उसकी लेखनी में। किन्तु वास्तव मे उसका जीवन क्या था ? इसे कोई नहीं जानता था, न कभी किसी ने जानने की चेष्टा ही की थी। उसे भी क्या पड़ी थी, जो वह खुद किसी को इस सम्बन्ध में कुछ कहता-समझाता, क्योकि वह भावुक था और था स्वाभिमानी।

गृहिणी ने छत की मुँडेर पर बैठे बैठे कहा— "आज तो बिना ईंधन के काम नहीं चलेगा। दाल तो लकड़ी आने पर ही चढाऊँगी। उठो, बड़ी देर हो गई, सूरज सिर पर चढ़ा आ रहा है।"

वह उस समय एक कविता लिख रहा था। उसे इतना अवकाश ही कहाँ था जो गृहिणी की ओर दृष्टिपात करता— कविता के भाव जो विलीन हो जाते! किन्तु ... किन्तु गृहस्वामिनी को इतना ज्ञान कहाँ से प्राप्त होता? कवि की पत्नी कवि भले ही न हो, पर भावुक अवश्य होनी चाहिए, जो कि पेट से पट्टी बाँध कर भी काव्य-सरिता में डूबी रह सके। लीला थी एक साधारण गृहस्थ की कन्या, जिसे घर के धन्धे के अतिरिक्त और कोई काम न था। वह फिर बोली— "लल्ला के पास एक भी कपड़ा ऐसा नहीं, जिसे तन पर डाल कर मेला देख आये। कल छड़ियों का मेला लगेगा, आखिर बच्चे का मन कैसे मुट्ठी में बाँध लिया जाय?"

पत्नी की अन्तिम बात सुनकर नरोत्तम के हृदय के जलते हुए अँगारे जैसे बुझने लगे— आखिर तो वह पिता ही था। कापी पर से दृष्टि हटा कर उसने लीला की ओर देखा— और देखता ही रहा। लीला के सिर के केश न जाने कब से तेल न मिलने के कारण उलझ कर गुच्छा बन गये थे। उसके अंग की धोती में चिपके हुए पैवन्द जैसे उसकी दरिद्रता से होड़ लगाते दीख रहे थे, और वह भी कितनी मैली— घर पर ही छेत-पीटकर धो ली गई थी। उसी में लीला का कृशगात लिपट रहा

था— दरिद्रता में रोग के समान। और आभूषण का तो नाम भी उसके लिए व्यंग था— दो काँच की चूड़ियाँ भी उसके हाथों में ढग की नहीं थीं।

कवि की भावुकता चीत्कार कर रो उठी। उसका हृदय पानी होकर आँखों में भर आया। उसके होठ हिले– यही है सुख? यही है सुहाग?– पत्नी रूठ कर उठ खड़ी हुई। बोली— "इनसे कैसे पार बसाय, न कुछ कहते बनता है, और न, न कहने से । रात-दिन लिखते रहने से पेट नहीं भर सकता। हमसे तो मौत भीं दूर भागती है।"

पत्नी का भाव देखकर नरोत्तम का शरीर जलने-सा लगा। जी में आया क्यों न वहीं छत पर से कूद कर प्राण दे डाले? लेकिन, . लेकिन फिर इन सबका क्या होगा.. ? वह उठा और हाथ मुँह धोकर बाजार की ओर चल दिया।

टालवाले के यहाँ परिचित जनों की भीड़ लग रही थी। वर्षा का आरम्भ होने के कारण सभी को घर मे इकट्ठा ईंधन डाल लेने की चिन्ता थी। किसी ने कहा— "पडित जी, क्या करे... ? गीली लकड़ियाँ जलाने मे बड़ी दिक्क़त होती है।" कोई बोला— "तोल मे भी मन की छः धड़ी ही उतरती हैं।" एक ने कहा— "पहले पडित जी को तोल, भैया। वाह, भई खूब लिखते हैं, और पढ़ते भी खूब हैं। उस दिन कवि-सम्मेलन मे आप ही का बोलबाला था।"

नरोत्तम ने यह सब सुना और सिर झुका लिया। फिर बोला—"नहीं, नहीं, मुझे कोई जल्दी नही है, पहले आप लोग तुलवा लीजिये।" और एक ओर को पड़ी बेंच पर जा बैठा। विचारों का ताँता बँध रहा था। निश्चय किया, चाहे कुछ भी हो, कोई नौकरी अवश्य ढूँढेगा। रोज़ रोज की हाय-हाय से किसी तरह पिंड तो छूटे। याद आया—कितना कुछ लिखा है आज तक? लिखते-लिखते उसे पूरे बीस वर्ष हो गए, इनमे से बीस दिन भी तो शान्ति से नहीं कटे। केवल प्रशसा से ही तो पेट नहीं भरता? आखिर इतना पढा-लिखा है, फिर भी क्या भाग्य में इस तरह धक्के खाने ही लिखे हैं? इसी समय टालवाले ने उसका ध्यान भङ्ग किया— "आइये पंडित जी!" उसने नजर उठाई, तो देखा कि तक पर धरा ढाईमना पृथ्वी को छू रहा है और खाली पलड़ा आकाश छूना चाहता है! किन्तु वह इधर न उधर, अब करे तो क्या करे? जेब मे थे कुल आठ आने। बोला— "भ ई, जरा, ठहरो, मै दाम लाना भूल गया, अभी आया तो ।"

टालवाला लकड़ियाँ चढाता-चढाता बोला— "कोई बात नहीं पडित जी, दामों का क्या है, फिर आ जाएँगे।" टाल के नौकर ने विश्वास प्रकट करते हुए कहा— "मैं तो आपकी उस लाइन पर मरता हूँ बस— 'जान न पाया, मैं जीवन को'।" टाल का मालिक झूमने लगा। बोला— "क्या कहना है उस कविता का!"

कवि का रोम-रोम सिहर उठा। वह बिना कुछ कहे ही सड़क पर आ गया। उसके पाँव पृथ्वी पर नहीं पड़ते थे। रास्ते में एक नई कविता रच डाली— 'विश्व हास है रोदन मेरा।' पर घर की देहरी पर पैर रखते ही सब भूलने लगा। फिर वही जीवन की विभीषिका, फिर वही अभावों का ताडव और पत्नी की मुरझाई हुई मुख-मुद्रा। आँगन में खड़े होकर उसने अनुभव किया कि पाकशाला से निकली हुई गन्ध से घर का कोना कोना महक रहा है। सोचा लीला भी कैसी बावली है, जब आज-भर का काम चल सकता था, तब न जाने मुझे क्यों इतना तङ्ग किया? खिचड़ी क्या गले में थोड़े ही चुभती है? और आगे बढ़कर रसोई घर मे झाँककर देखा – वह अँगीठी पर खिचड़ी बना रही है और सामने पड़ा है कवि के जीवन-भर की कमाई का ढेर। पर दूसरे ही क्षण वह स्तब्ध रह गया। समझ में न आता था कि वह भी इसे जीवन की कमाई ही कहे या रद्दी के टुकडे— ईंधन?

वारदात

कुछ नये और कुछ पुराने अखबारों का ढेर मेरे सामने पड़ा हुआ था और मै उन्हे छाँटने में व्यस्त थी कि बाहर बड़ा कोलाहल सुन पड़ा। पास ही बैठी महरी की लड़की श्यामा बच्चे को खिला रही थी और महाराज चूल्हे में आग जलाने की तैयारी में मेरे सामने पडे हुए अखबारों को घूर-घूर कर देख रहा था।

मैंने महाराज से कहा— "तुम लोग यह भी नहीं देखते कि इनमें कौन जलाने योग्य है और कौन नहीं, जो भी कागज हाथ पड़ा कि चूल्हे मे झोंकने से मतलब। देखो, लो यह अलमारी के ऊपर डाल आओ, और लो इन्हे रद्दी मे दे देना, समझे, चूल्हे मे न जला डालना . ।"

"जी।" कह कर वह अलग छाटे हुए अखबारों को सहेजने लगा— तभी फिर एक चीख सुनाई दी— "अरी मैयारी ई मैं मर गई।"

"जरा देख तो श्यामा। यह कौन चिल्ला रहा है?" अखबारों को एक ओर सरकाते हुए मैंने लड़की से कहा।

वह मुन्ने को गोदी में उठा बाहर भागी और फिर तुरन्त ही वापस आकर हकलाते हुए बोली— "बड़ा . आ ग .. गजब हो गया बीबी जी। नाजर अपनी बहू को मारे डाल रहा है, ... उसी की बहू चिल्ला रही है। लड़की अलग रो रोकर दम निकाल रही है।"

"ऐ . , नाजर चम्पा को मार रहा है— क्यों? जा भैया से कहदे कि नाजर अपनी बहू को मार रहा है।"

श्यामा के मु ह से थूक झड़ रहा था और उसका दम फूल रहा था, जैसे इसी पर मार पड़ी हो।

इतने में फिर चीख सुनाई दी— "मर गई ..... मर गई . हाय कोई बचाओ .. ." मेरा जी उड़ने-सा लगा— "कम्बख्त, दिन भर काम करती है और तिस पर भी यह उसकी हड्डियाँ तोड़ता है। खुद तो इससे कुछ होता नही, वह बिचारी सुबह से शाम तक छोटी लड़की को गोद मे दबाए तमाम कोठियों की धुलाई-सफ़ाई करती है, और यह बैठा बैठा उसकी कमाई खाता है। कितना बेशर्म है यह! यह भी नहीं होता कि बच्चे ही को थामले जरा। वह फूल-सी लड़की को कभी पेड़ों की छाया में और कभी नाली के पास दीवार के सहारे डाल-कर, तो कभी रोती हुई को बगल मे दबा सारा काम करती है।" कहते

हुए मैंने बाहर आकर देखा तो सच ही वह बड़ी निर्दयता से उसे मार रहा है और किशोर उसे डाँट रहा है— "तूने चम्पा को क्यों मारा रे . , क्या इसके प्राण ही निकालकर रहेगा आज ... ?"

मुझे देखकर बोला— "देखा अम्माँ । यह इसे कभी झाड़ू से और कभी इस टीन के टुकड़े से बराबर मार रहा है, कहने से भी नहीं छोड़ रहा दुष्ट ... ।"

मेहतर को डाँटते हुए मैंने कहा "दूर हट, नहीं तो तेरी अक्ल ठिकाने से कर दूँगी .., आखिर हुआ क्या ? कुछ मालूम तो हो कि सवेरे सवेरे ही इस बेचारी ने क्या अपराध कर डाला ऐसा जो तू इसका दम निकाले दे रहा है ?"

नाजर ने मुझे देखकर झाड़ू पजर दूर फेंक दिया, फिर अंटी में से एक खाकी रंग के कागज का टुकड़ा निकाल कर मेरे सामने कर दिया, बोला— "यह देखो, सरकार, 'वारण्ट' बीबी जी । आज चार दिन से इस कागज को लिये घर में बैठी है ......, यह है इसका 'वारण्ट' । इसीलिये तो मार रहा था कि बीबीजी या भैयाजी को दिखलाया क्यों नहीं, कुछ न कुछ तो हो ही जाता , कहती है— "मैं तो इसे मिट्टी के तेल की पर्ची समझ रही थी ।" पूछो हरामजादी से, यह मिट्टी के तेल की पर्ची है या इसका 'वारण्ट' ? हमारी तो नाक कट गई हुजूर । बिरादरी मे मुँह दिखाने के भी नहीं रहे, माँ-दादी सब इन्हीं घरों मे काम

करते-करते मर गई, कभी किसी ने अँगुली नहीं उठाई, अब यह सबकी इज्जत-आबरू लेकर जेलखाने जायगी .... ।"

वह न जाने क्या-क्या कहता रहा। मैंने किशोर से पूछा— "वारट ? इसका 'वारंट' क्यों निकला भैया ! क्या बात हुई ? कोई सिपाही लेकर आया था क्या ?"

"नहीं तो जी, घर पर कोई दे गया था— चार दिन पूरे हो चुके आज।" नाजर ने बहुत गम्भीरता से बीच ही में उत्तर दिया।

किशोर ने उसे समझाते हुए कहा— "वारएट तो खैर नहीं है यह, हाँ इसका चालान अवश्य हो गया है, १३ तारीख को 'टाउनहाल' में जाना होगा, उस दिन इसकी पेशी है, सो मैं 'चेयरमैन' को चिट्ठी लिख दूँगा, इसे माफ़ कर दिया जायेगा। शायद थोड़ा-बहुत जुर्माना हो जाए, उसी का 'समन' है यह।"

"लेकिन चालान हुआ क्यों ?" मुझे भी थोड़ी चिन्ता हो गई, बेचारी को गुजारे लायक पैसा मिलता है— इस मँहगी के जमाने में और जुर्माना .. .. ?

नाजर फिर उत्तेजित हो उठा, बोला— "सरकार। कूड़ा डालने के ऊपर ही सफ़ाई के सिपट्टर ने इसका चालान कर दिया होगा। भला बताओ तो हर एक कोठी का कूड़ा डालने के लिये कोस भर खत्ते पर

कैसे जाया जा सकता है ? पहले तो यहाँ टब रक्खे रहते थे। अब नये साहब ने वह भी उठवा दिये, मैला तो यह सिर पर लादकर रोज सुबह-शाम खत्ते पर डालने जाती ही है।"

मैंने कहा— "हाँ टब तो रखने ही चाहिये, टैक्स लेते हैं मनमाना यह लोग – और कूड़ा डालने का कोई इन्तज़ाम नहीं। पहले तो टब रक्खे ही रहते थे, कभी इसका चालान नहीं हुआ। तो क्या अब यह भी "भारत-रक्षा-विधान" के ही अन्तर्गत है कि घर का कूड़ा बाहर मत फेंको। "भारत-रक्षा-विधान" में बहुत कुछ तो हो चुका, अब न जाने और क्या क्या होने को है ? चार जने से ज्यादा मुर्दा फूंकने तक को नहीं जा सकते, बिना 'परमिट' कफ़न भी नहीं मिल सकता। एजेंसी का नपा-तुला अनाज लेकर किसी प्रकार पेट पाटलो। और तो और भैया। अपने मकानों तक पर भी जोर नहीं। कैसी मुसीबत है........ लो बताओ घर का कूड़ा भी घर मे ही रक्खो . ...। पर कहे कौन ? यह तो चुंगी का काम है कि टब रखवादे।"

मेहतरानी ने सिसकते-सिसकते कहा— "बीबीजी! सिपाही ने मेरे दो तीन डंडे मारे और लात मारी, कमर फटी जा रही है, ऊपर से इस जलैया ने हड्डी-पसली तोड़ डाली।"

मैंने उसकी ओर देखा— "वह होठों को दबा-दबाकर अपने मन पर ही सब व्यथा सह रही थी। दम छोड़-छोड़कर आँखों के आँसू आँखों

ही मे पी रही थी। हाथों की सभी चूड़ियाँ टूटकर जमीन में पड़ी थीं। कुछ कलाइयों मे घुसकर रक्त बहा रही थीं। लड़की एक ओर बैठी रो रही थी। सामने ही एक छोटे कुल्हड़ में दूध रक्खा था। शायद अभी दुकान से लाई होगी। पिला न पाई थी। मैंने उसे कुछ आश्वासन देते हुए कहा— "घबरा मत, मैं मालूम कराऊगी, अगर यह 'भारत-रक्षा-विधान' के अन्तर्गत न हुआ तो शायद कुछ सुनवाई हो सके, नहीं तो कुछ नहीं हो सकता।"

नाजर ने फिर वही कागज का टुकड़ा दिखाते हुए कहा— "इसका क्या करूँ हुजूर?" किशोर ने उसे एक चिट्ठी थमाते हुए कहा— ' यह दोनों चीजें 'चेयरमैन' साहब के यहाँ ले जाओ, और यह लो दो रुपये, जुर्माना देना पडे तो दे आना।"

शिलान्यास

उस दिन सड़कों की सफ़ाई और छिड़काव देखकर तो इन्द्रपुरी का पथ कल्पना में घूमने लगा। चुंगी के दर्जनों मेहतर जमीन में आँखें गड़ाए, सड़क से एक एक तिनका बीनने की कोशिश में इतने तल्लीन थे कि मानो उन्हें अपने अस्तित्व का भी ज्ञान न था, जैसे समस्त मन और प्राण की शक्ति वे धूल के एक-एक कण में खो बैठे थे।

छिड़कावकवाली गाड़ियों की लार की लार तमाम सड़क पर नहर-सी बहा रही थी। इनके अलावा सैंकड़ों भिश्ती मशक पर मशक उँडेल रहे थे, कुओं का पानी टूट गया था और चुंगी का बड़ा पाइप खोल दिया गया था, जैसे आज गर्द गुबार और धूल मिट्टी का नामोनिशान ही मिटाकर चैन की स्वास लेंगे ये चुंगीवाले।

पेड़ों की सूखी पत्तियाँ एक-एक करके बीनी जा रही थीं। राहगीरों को इधर-उधर ही रोक दिया गया था। चरी की गाड़ियाँ, और बोरो में भरे हुए आलुओं के ठेले, एक दम 'ब्रेक' लगाकर खडे कर दिये गये थे। सिर पर घास के गट्ठर लादे घासवाले स्त्री पुरुष कोठियों की दीवारों के पीछे छिपा दिये गये थे या पेड़ों की आड़ में खडे कर दिये गए थे। गोबर की टोकरियाँ और लकड़ियाँ सिर पर धरे लड़कियाँ, स्त्रियाँ और छोटे छोटे नंग-धड़ग लड़के थरथरा रहे थे, न घर जा सकते थे, न लौट ही सकते थे। लौट कर जाएँ भी कहाँ, घर तो उधर ही सड़क के उस पार पुरवे में है। चौराहे का सिपाही आज-जितना सतर्क पहले कभी नहीं देखा गया था। प्रायः उसकी मौजूदगी मे कभी साइकिल सवार और ठेले में टक्कर होती थी, तो कभी किसी लारी या कार के साथ तागा ही टकराते टकराते बचता, लेकिन सिपाही या तो मौज के साथ चाट खाते देखा जाता था या किसी से बातें करता, मानो उसके लेखे ये जीवन-मरण की समस्याएँ नहीं, बल्कि मनोरजन की बातें थीं, उसे इन सब झगड़ों से क्या लेना देना था ?

सामने ही कोई सरकारी दफ्तर बनने वाला था— जहाँ महीनों से चिनाई का सामान इकट्ठा किया जा रहा था, जो कि फैलते-फैलते बिलकुल सडक के किनारे तक आ पहुँचा था। आज वह भी न जाने कैसे तरतीब से लगा दिया गया था। टूटे हुए बोरिए और फटे हुए बाँस तथा बल्लियाँ भी कहीं छिपा दी गई थीं और वहाँ खूब साफ सुथरा

मैदान दीखने लगा था और सुन्दर सुन्दर फूल पत्तियों के गमले सजा दिये गए थे। बिल्कुल बीच में एक शानदार डेरा और दरबारी शामियाना लगा दिया गया था जिसके बाँसों मे रंग-बिरंगे पर्दे लटका दिये गए थे और बढ़िया से बढिया सोफे और कुर्सियाँ बिछा दी गई थीं, मानो किसी लड़कीवाले के यहाँ शादी है और वर-स्वागत में यह सब तूल तमूल बाँधा जा रहा है। डी० एस० पी० से लेकर डिप्टी कलक्टर तक देख भाल और स्वागत में व्यस्त थे, फिर छोटे मोटे अहलकारों की तो बात ही क्या ?

अकस्मात् इतने बडे आयोजन को देखकर सब आश्चर्यचकित थे। हमारी महरी भी रास्ता बन्द होने से लौट कर चौखट पर आ बैठी, और मेहतरानी भी सिर से कूडे और मैले का टोकरा उतार पेड़ की जड़ में जा छिपी। दोनों बड़ी खिन्न थी— साझ हो गई ; आज चूल्हे मे आग भी न जाने किस वक्त जलेगी ; बाल-बच्चे भूखे ही छटपटा रहे होंगे... ।" पर लाचारी का क्या इलाज ?

... ...

रामजस ने थैला खाट पर फेंक कर, मेरे हाथ में पैसे थमाते हुए कहा— "साग सब्जी कहाँ से लाऊँ ? कोई जाने ही नहीं देता, जगह जगह सिपाही खडे हैं, कहते हैं चालान कर देंगे .... ।"

मैं सोचने लगी— "अब क्या हो ? आखिर पेट तो पालना ही होगा— घर में साग भाजी का पता नही। आलू तो बारह आने सेर से

कम नहीं मिलते, वही इकट्ठे मँगा कर रखे जा सकते हैं— सो जब से लड़ाई जीती सरकार ने तब से रोज इसी इन्तजार में इकट्ठे नहीं मँगाते कि आज सस्ते हों— कल हों। हरी सब्जी है ही नहीं। आज यह सब क्या हो रहा है? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा कि आखिर मामला क्या है जो सब रास्ते बन्द कर दिये गए और जगह जगह पहरेदार खड़े हैं।"

चमन ने कमरे से बाहर निकलते हुए कहा— "अम्मा! आज गवर्नर साहब आने को हैं। वह सरकारी दफ़्तर बन रहा है न, उसका शिलान्यास करेंगे।"

महरी चौकन्नी सी होकर खड़ी हो गई "किसका सत्यानास करेंगे, भैया जी?"

और चमन ठहाका मार कर हँस पड़ा— 'पगली! सत्यानास नहीं शिलान्यास? देखती नहीं, ऊपर जाकर देख तब पता लगेगा।" और तब वह छत पर चढ गया। हम सब भी पीछे पीछे चले। सामने से बहुत सी गाय-भैंसें भारत-रक्षा कानूनों के समान सिर पर चढी आ रही थीं। ग्वाला भरसक यत्न कर रहा था पर वे रुकती ही न थीं और उनके पीछे पीछे कई एक लड़के लड़कियाँ गोबर के चोथ उठाते सिर पर टोकरियाँ धरे दौड़ लगा रहे थे। सिपाहियों ने एक दम हमला करके गाय भैंसों को पीछे की ओर खदेड़ दिया। बेचारा ग्वाला उनके पीछे

हीं दम तोड़ता हुआ भागा, छोटे लड़के लडकियों की टोली नाले की पुलिया के नीचे डर के मारे जा घुसी। पर उनमे जो सबसे बडी लड़की थी, वह कुछ साहस किये आगे बढने की कोशिश कर रही थी और बराबर रोती जा रही थी— "बड़ी देर हो गई, अम्मा तो आज मार ही डालेगी।" आयु होगी लगभग १२ वर्ष, रंग गेहुँआ और आकृति आकर्षक। तन पर एक धरती के रग की मैली और फटी हुई ओढ़नी लपेटे वह सिकुड़ी-सी जा रही थी। टागों मे तार-तार हुआ गाढे का लाल घाघरा और एक चीथडा हुई कुरती, बस यही उसकी वेषभूषा थी। सिर के बाल उलझ कर मुँह पर बिखरे पडे थे। एक सिपाही ने दूसरे की ओर देखा और हँस दिया, लडकी और भी जमीन में गड़-सी गई। तीसरे ने उसे हाथ से ढकेल कर एक ओर कर दिया, कहाँ से आ गई यह पलीत कम्बख्त, हट-हट गवर्नर साहब की सवारी आने वाली है, नहीं तो अभी चालान कर दी जायगी......। वह भी पुलिया के नीचे जा घुसी। महरी मुँडेर पर बैठी यह सब देखकर सहम-सी गई। एक बार उसने भी अपने मैले और फटे हुए कपड़ों की ओर देखा और खम्भे की आड़ में छिप गई; शायद चालान के डर से।

'....नया अंक ?'

[१]

"......का नया अङ्क आ गया क्या ?" मेरे एक साहित्यिक साथी ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

"हाँ, आ गया।"

"देखूँ जरा, सुना है कि इस पत्रिका का अब वह स्टैण्डर्ड तो रहा नहीं"— वह बोले।

"खासी है... ..। ठहरिये, अभी दिखलाती हूँ, जरा यह कविता पढ डालूँ। मालूम होता है कोई नई कवयित्री हैं, फिर भी थोडे ही दिनों में काफी उन्नति की है— प्रत्येक पंक्ति से ओज और लालित्य फूटा पड़ता है। अब से दो मास पहले भी किसी पत्र में इनकी रचना देखी थी।"

"तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? सम्भव है किसी पुरुष की कविता इससे अच्छी होने पर भी प्रकाशित न हो पाती। यह युग तो नारी-जागृति का युग है न?...... इसमे कभी-कभी चित्र अच्छे आ जाते हैं" उन्होंने आज का दैनिक उठाते हुए कहा। ऐसे गम्भीर विद्वान् की उपर्युक्त धारणा से मुझे खेद हुआ। बोली— "आपकी रचनाएँ कितनी बार लौट आई हैं?"

"बहुत बार।"

"बस रहने दीजिये, मै तो देखती हूॅ कि प्रति मास किसी न किसी पत्र-पत्रिका मे आपकी रचना अवश्य रहती है।"

"तो वह होती होगी 'नारी-टाइप' "— कह कर वह जोर से हॅस पड़े। मेरा रोम-रोम जलने सा लगा— "यह इस समय यहॉ आये ही क्यों जाने..... ?"

स्त्रियो के प्रति इनके यह भाव हैं— मन मे ऐसा विचार कर और तर्क बुद्धि को दबा कर मै फिर कविता पढ़ने लगी। पढते-पढते मुझे कुछ निराशा सी होने लगी— "यह कैसी कविता? रचयित्री ने जिस प्रकार आरम्भ किया, वैसे ही अन्त तक नहीं ले जा सकीं, कहीं-कहीं असाधारण रूप से क्रम टूट गया है।" सोचने लगी— "यह इस कविता को न देखते तो अच्छा ... ।"

कविता के दाहिनी ओर कवयित्री का चित्र था, सूरत-शक्ल जानी-पहचानी सी लगी— "ऐसी ही आकृति मैंने कहीं देखी अवश्य है , पर कहाँ ? यह नहीं याद आया।" और फिर इधर-उधर के पृष्ठ उलटने शुरू कर दिये। वह भी शायद असभ्यता समझ कर मुझसे दुबारा अङ्क न माँग सके। जैसे ऊब कर बोले— "अच्छा क्षमा कीजिये, आपका बड़ा समय नष्ट किया— अब चलता हूँ।"

मेरे हृदय पर सहसा ही आघात सा हुआ— सम्भवतः अपने ही व्यवहार से। अङ्क मेज पर डालते हुए कहा— "नहीं, नहीं, बैठिये। मैं इसे ही देख रही थी, कविता मेरी सम्मति में तो सुन्दर है, किन्तु किसी की सभी कृतियाँ तो श्रेष्ठ होना कठिन ही है।" वह बोले— "हाँ, यह तो ठीक ही है।" फिर . . का अङ्क उठाकर देखने लगे। पढ़ते-पढ़ते उनके चेहरे के भाव बदल रहे थे, और मुझे उस समय जैसा कुछ लग रहा था— वह केवल अनुभव तक ही सीमित रह सकता है। लेकिन इसके पश्चात् उन्होंने मुझसे केवल इतना ही कहा, 'आपने मेरी वह कविता..... तो देखी होगी न ? अब से कोई वर्ष भर पहिले कलकत्ते के एक मासिक मे निकली थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ याद हैं ?"

मैंने कहा— "हाँ, कहीं कहीं से।"

"अच्छा तो इसे हाथ में लेकर सुनिये, सुनाये देता हूँ।"

पत्रिका का अङ्क उन्होंने मुझे थमा दिया और वह कविता पाठ करने लगे। मैं गुरु के समान बैठी मिलान कर रही थी। कविता समाप्त

होते न होते पत्रिका हाथ से छूट पडी। "कितना साम्य ? कहीं कहीं पूरे के पूरे पद ज्यों के त्यों ?" शर्म के मारे मै गड़ी सी जा रही थी। वह उठ खड़ें हुए, चलते-चलते बोले— "मै तो आपको केवल बधाई देने के अभिप्राय से आया था।"

"सो कैसी ...... ?" मैने कौतूहल से पूछा।

"इस बार 'विशाल भारत' में आपकी कविता आई है न — 'कवि से .....' ? बस, केवल सुन्दर है।" वह चले गये। मै कुछ हर्ष और विषाद मे बैठी की बैठी रह गई।

[२]

पंडाल खचाखच भरा हुआ था। कवि-सम्मेलन आरम्भ होने का समय तेज़ी के साथ बीता जा रहा था। सभापति महोदय की प्रतीक्षा में लोगों की आँखे बार-बार दरवाज़े पर जा अटकती थी। बाहर से आये हुए कविगण, कुछ अधिक उतावले से, कभी उठते और कभी बैठ जाते थे। संयोजक की परेशानी का तो कहना ही क्या ? मेरा मन भी ऊब उठा। तभी किसी ने पीछे से कहा— "बहिन जी ! नमस्ते... ।"

"यह क्या ? तुम कब आई रामा ! आओ बैठो।" कह कर मैंने एक खाली कुर्सी निकट ही खींच ली, वह बैठ गई। रामेश्वरी हमारे पण्डित जी की कन्या थी— बड़ी सीधी और सुशील। जिनके साथ उसका विवाह हुआ था, वह भी एक साहित्यिक होने के नाते मेरे परिचित ही थे। लेखक, कवि और कहानीकार से लेकर आलोचक

तक थे वह। मतलब कि सभी ओर उनकी गति-विधि थी और कभी-कभी उनकी कोई रचना पत्र-पत्रिकाओं मे देखने को मिल भी जाती थी। मैंने पूछा— "कवि-सम्मेलन का निर्मंत्रण गया होगा, तभी मुकुटधर आये होंगे ? चलो, आज प्रथम बार उनके मुँह से उनकी कविता सुनने का सौभाग्य हमे भी प्राप्त हो जायगा।" वह भी शायद पास ही खडे थे, बोले— "नमस्ते ! जी... और 'इनकी' कविता सुनने का भी तो पहिला ही अवसर होगा आपको। .. . . आप तो स्वयं बड़ी .... !"

"इनकी ? किनकी कविता ?" मैंने चकित होकर उन दोनो की ओर देखा।

वह चुप थे, और रामा जैसे गडी जा रही थी। मैंने फिर पूछा— "किसकी कविता से मतलब है आपका ?"

"इन्हीं की।" उन्होने रामा की ओर सकेत करते हुए कहा।

मै प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर देखती हुई बोली— "क्यों नहीं ... ? आखिर कवि की पत्नी है या किसी बुद्धू की ...... ?"

पर रामा जैसे कहीं दूर दिशा मे थी।

पल भर मे सभापति जी का आगमन एक साथ बजनेवाली सहस्रों तालियों के द्वारा चौकन्ना कर गया। कविता पाठ आरम्भ हुआ— एक के बाद एक कितने ही कवि मच पर आये और चले गये।

रामा के पति मुकुटधर वाजपेयी के पश्चात् श्रीमती रामा वाजपेयी

का नाम पुकारा गया। मै थोडी और सावधान होकर बैठ गई— "क्या यह कवि भी हो गई ? जिसे अपना नाम भी सही लिखना न आता था। इसे कहते हैं उन्नति।"

अपनी कविता जैसे तैसे समाप्त कर वह फिर मेरे पास आ बैठी। स्वास की गति, जैसे घुट कर रुक जायेगी, ऐसी थकी हुई सी। मुकुटधर ने मेरे निकट आकर कहा— "इनकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित करा रहा हूँ— कभी अवकाश मिलने पर उसके लिये दो शब्द लिखने की कृपा अवश्य करें।" मैंने जैसे यह सब सुन कर भी नही सुना, रामा से पूछा— "यह कविता तुमने कब लिखी ?" और उसकी टोड़ी छूकर, मुँह कुछ ऊपर करके मैंने उसकी आँखों में आँखे डाल दीं। देखा— रामा मे तिल भर भी फर्क नही है— वह अब भी उतनी ही सरल है। वह बोली— "बीबी। यह सब इन्ही की करतूत है। अपनी कविता कभी मेरे नाम से छपा देते हैं, कभी अपने नाम से।" मैंने बहुत शान्त भाव से कहा— "केवल अपनी ही या दूसरों की भी ? यह जो कविता तुमने पढी, पता है कुछ— किसकी है ? वह देखो ...! 'उनकी'। कवि की पत्नी भी कवि ही हो, यह भी कोई साध है ?"

रामा की भृकुटी तन गई, उसने घूर कर पति की ओर देखा और उसके साथ ही मैंने भी उधर ही— "क्या वह अब भी सम्मति के लिये उत्तर की आशा मे हैं ?"

पर उनके ऊपर जैसे किसी ने सौ घडे पानी डाल दिया हो।

निष्काम प्रकाशन आपके गृह में 'जीवन-झाँकी' के नाम से कुछ यथार्थ अनुभवों का सार सरल साहित्य के रूप में दे रहा है। इन प्रकाशनों को पढ कर आपको प्रतीत होगा कि ये पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें आपका चेतन व अचेतन मस्तिष्क पढना चाहता था, जो आधुनिक हृदय में पहुँचकर एक उथल पुथल छोड़ती हैं, जो प्रत्येक सुसस्कृत मनुष्य के पुस्तकालय का आभूषण हैं। हम चाहते हैं कि प्रत्येक पुस्तक सर्वोत्तम छपाई एवं कम से कम मूल्य पर सुन्दर सस्करणों में हर हिन्दी-भाषा-भाषी को भेंट की जाये। लेकिन आजकल की दशा हमारे प्रतिकूल है। फिर भी आशा है कि थोडे अवसर बाद हमारा यह अभीष्ट पूर्ण होगा।

इसके अतिरिक्त हम राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, आदि पर पुस्तकें निकालने जा रहे हैं। यह पुस्तकें उन लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों की कलम से होंगी जिनका अपने अपने विषय पर पूर्ण प्रभुत्व है।

सहृदय जनता का सहयोग ही हमारा एकमात्र अवलम्ब है।